ईश्वर प्रेम पुष्प माला

द्वितीय पुष्प

ईश्वर प्रेम

ईश्वर प्रेम पुष्पमाला

द्वितीय पुष्प

सन्त श्री ईश्वर प्रेम

ईश्वर प्रेमाश्रम
प्रयाग

समर्पण

प्रातः स्मरणीय, परमादरणीय १००८ श्री श्री भगवान भोलानाथ जी महाराज एवं सर्वसेव्या पतित पावनी जगज्जननी श्री श्री मातेश्वरी जी............

हे नाथ ! आज तक मेरी लेखिनी ने कुछ भी लिखने का साहस नहीं किया। सांसारिक बुद्धि लेकर भगवद् विषय में लिख ही क्या सकता हूं। अपने इस दीन, हीन, अकिंचन भोले बालक के हृदय में बैठ कर जो कुछ भी जगतहिताय लिखवाया अथवा करवाया है वह एक मात्र आपकी ही अहैतुकी एवं कारणरहित कृपा का प्रमाण है। आपकी दी हुई वस्तु आपही के पावन पुनीत चरण-कमलों में समर्पित है।

पुत्र शिष्य
"ईश्वर प्रेम"

विषय सूची

प्रथम खण्ड

प्रवचन

व्याख्यान माला

द्वितीय खण्ड

संकीर्तन

भूमिका

'ईश्वर प्रेम पुष्पमाला' का यह द्वितीय पुष्प है। प्रथम पुष्प की भाँति इसके भी प्रथम खण्ड मे जिज्ञासुओ की ज्ञान पिपासा शान्त करने के लिए महाराज जी, सन्त ईश्वर प्रेम, के चुने हुए प्रवचन और व्याख्यान है तथा द्वितीय खण्ड मे माता श्री कृष्णमयी के भक्ति-रस-सिक्त भजनो का सग्रह। परन्तु इस भाग मे प्रकाशित प्रवचनो मे जो प्रेरणा और आश्वासन है, व्याख्यानो मे जिज्ञासुओ के निजी प्रश्नो का व्यवहारिक स्तर पर जो समाधान है और भजनो में जो भावो की तीव्रता और मधुरता है उनके कारण यह भाग भी न केवल प्रथम भाग की भाँति लोकप्रिय होगा वरन् कई अर्थो में प्रथम भाग का सहयोगी और पूरक भाग हो गया है।

सन्त ईश्वर प्रेम जी महाराज के अनुपम व्यक्तित्व से आकृष्ट होकर अक्सर लोग उनकी जीवनी के विषय मे जानने के लिए लालायित रहते हैं। महापुरुषो का वास्तविक जीवन तो एक सूक्ष्म जगत् मे व्यतीत होता है और जिस अन्तर्जगत् मे वे विचरण करते है उसका वाह्य घटनाओ द्वारा कोई आभास देना एक दुस्साध्य कार्य है। फिर भी महाराज जी के जीवन के विषय मे जो तथ्य जाने जा सके हैं उनकी थोडी बहुत चर्चा यहाँ की जा रही है। महाराज जी का जन्म प्रयाग के एक उच्च कोटि के धर्म निष्ठ कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार मे हुआ। जन्म का नाम श्री जयशकर वाजपेयी था। उच्च ब्राह्मण-कुलोचित आचार-विचार, यम-नियम, साधना न केवल उनके हिस्से मे पड़ी थी बल्कि उनका उन्होने कठोर पालन किया। बाल्य काल ही से जगत् और इस जगत् की पहेली के प्रति ऐसे जागरूक थे कि देह, मन, बुद्धि को स्वस्थ, स्वच्छ और कुशाग्र बनाने के लिए जो भी साधन उपलब्ध थे उनके समुचित सदुपयोग करने में कुछ भी उठा नही रक्खा।

कालेज मे विद्यार्थी वे विज्ञान के थे। रसायन शास्त्र, प्राणि शास्त्र और वनस्पति शास्त्र उनके विशेष विषय थे परन्तु प्रतिभा ऐसी सर्वतोमुखी थी कि परीक्षा के लिए निर्धारित विषयो के अतिरिक्त धर्म, दर्शन, साहित्य, सगीत के अध्ययन मे बहुत सा समय व्यतीत करते थे। विद्वानो और पुस्तको से जो कुछ मिल सकता उसके उपार्जन मे सतत प्रयत्नशील रहते थे। प्रकृति ने उनको जैसी प्रतिभा दी है वैसा ही उन्होने सुन्दर सुडौल शरीर भी पाया है जिसके कारण उनके व्यक्तित्व मे एक अद्भुत आकर्षण है। उनके विद्यार्थी जीवन मे सभी समझते थे कि आगे चल कर वे एक कुशल डाक्टर या मेधावी प्रोफेसर होगे किन्तु अदृश्य शक्तियाँ तो उन्हे किसी दूसरी ही ओर ले जाना चाहती थी। धार्मिक जिज्ञासा उनके भीतर उसी दिन से जाग गई जिस दिन उनका उपनयन सस्कार हुआ और इस जिज्ञासा को शान्त करने के लिए उन्होने अनेक साधन, प्रयोग किए और इन साधनों और क्रियाओ के बीच एक समय तो ऐसा आ गया जब उनके भीतर सन्यास ग्रहण कर लेने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो गई।

महाराज जी के विवाह की भी एक विचित्र कहानी है। उन दिनो वे भुवाली के पर्वत शिखरो पर एक मकान के दोमजिले पर योगाभ्यास किया करते थे। विशेष रूप से सिद्धासन मे देर तक स्थित रहा करते थे। उसी मकान के नीचे की मंजिल मे एक उच्च कुल का ब्राह्मण परिवार ठहरा हुआ था। इस परिवार के मुखिया यौगिक सिद्धियो को प्राप्त करने मे सलग्न युवक के मनोहर शरीर और असाधारण निष्ठा पर मुग्ध हो गए। उन्होने निश्चय कर लिया कि वे अपनी भॉजी, वर्त्तमान् मातेश्वरी मा श्री कृष्णमयी का विबाह इस अनुपम युवक से करेगे और उन्होंने विवाह का प्रस्ताव सामने रक्खा। अध्यात्म पथ पर आरूढ नवयुवक और कन्या पक्ष के अभिभावको के लिए भी एक विकट समस्या थी। अतएव यद्यपि दैवी विधान से विवाह तो हुआ परन्तु आध्यात्मिक समस्या उलझी ही रही। महाराज जी के जीवन में यह गहरे सघर्ष और आन्तरिक हृदय मन्थन के

दिन थे। क्या उस आध्यात्मिक गन्तव्य का जिसकी ओर महाराज जी तेजी से बढ रहे थे सामान्य गार्हस्थ्य जीवन से सामजस्य स्थापित किया जा सकता है ? क्या जागतिक व्यापार आध्यात्मिक जीवन की परिपूर्णता मे स्पष्ट रूप से बाधा नही उपस्थित करतें ? क्या जगत् के परिवर्त्तन स्रोत मे प्रवाहित होते हुए भी अपने को नित्य बोध, नित्य आनन्द की स्थिति मे अविचल रूप से रक्खा जा सकता है ? यह एक ऐसा प्रश्न है जो विविध रूपो और अनेक सन्दर्भो मे अनादि काल से महात्मा गौतम बुद्ध से लेकर श्री रामकृष्ण परमहस तक अनेक महापुरुषो के सामने उपस्थित होता रहा है। महाराज जी ने इस स्पष्ट विरोध के समाधान की खोज मे बहुत तपस्या की, अनेक महापुरुषो का सत्संग किया, बहुत सोचा विचारा और समाधान मिला उन्हे अपने गुरुदेव, भगवान श्री भोला नाथ जी महाराज के सम्पर्क मे आकर। इन अवतारी महापुरुष ने न केवल समस्या का समाधान किया बल्कि यह भी बतलाया की इन वाह्य विरोधो का समुचित समाधान ही साधना का लक्ष्य है। महाराज जी और श्री माता जी के लिए उनका आदेश है कि वह इस सत्य को कि जागतिक सघर्षो के बीच ब्राह्मी स्थिति अविचलित रक्खी जा सकती है अपने जीवन मे चरितार्थ करें और प्रकाश मे लावे। वर्षो हो गए महाराज जी को और श्री माता जी को इस प्रकाश की मजु मरीचियो का वितरण करते हुए। वाह्य रूप आज भी उनका एक गृहस्थ का है और केवल वाह्य रूप से प्रभावित होने वालो का इस रूप से चकित होना भी आश्चर्य का विषय नही है। स्पष्ट है कि जागतिक व्यापारों के साथ एक अतीन्द्रिय आत्मसुख का यह समन्वय कोई हँसी खेल नही है—तरवार के धार पं धावनो है। चमत्कार तो यह है कि अपने ईश्वर प्रेमाश्रम मे इस दुस्साध्य साधना को उन्होने न केवल सुगम और सहज बना लिया है वरन् अपनी दिव्य शक्ति और कृपा द्वारा दूसरों के लिए भी मार्ग प्रशस्त कर दिया है।

महाराज जी की विचारधारा को किसी मत, पद्धति, प्रणाली के रूप

मे प्रस्तुत नही किया जा सकता। उनका ईश्वर प्रेम प्रत्यक्ष अनुभव और रसानुभूति द्वारा साक्षात्कार पर आधारित है। प्रेम, सेवा और विश्वास द्वारा सजगता और साक्षात्कार सम्भव भी है और साध्य भी। कोई विशेष बौद्धिकता या विद्वत्ता इतनी अपेक्षा नही है जितनी सहजता और समर्पण। फिर भी उनके मन्तव्यो का कुछ आभास उन बातो से मिल सकता है जिनकी चर्चा वे अपने प्रवचनो में अक्सर किया करते है। 'ईश्वर है, वह सर्वशक्तिमान, व्यापक और नित्य साथ है, वह प्रेममय, परम सुन्दर और कृपालु है। अहकार ही शत्रु है इसको प्रभु चरणो मे बाँध कर ही निर्भयता प्राप्त की जा सकती है। ससार रूपी नाटक की रचना मे हमे जो स्थान दिया गया है वह पूर्ण है इसलिए कि वह रचना की व्यवस्था के अनुरूप है इसलिए अपने कर्त्तव्य पालन ही से भगवान को प्रसन्न करना है। विश्व एक कुटुम्ब है अतएव अपने स्वजन सबधियो के समान ही सब से प्रेम एव उनकी सेवा करनी है। प्रत्येक हृदय मे प्रभु विराजमान हैं इसलिए किसी का भी हृदय न दुखाना ही हमारी साधना है। भिन्न-भिन्न धर्म भगवान तक पहुँचने के भिन्न-भिन्न मार्ग है अतएव किसी के भी धार्मिक विश्वास पर आघात नही करना है। सासारिक और आध्यात्मिक जीवन मे कोई विरोध नही है अतएव दोनो में समन्वय स्थापित करना है। अन्त करण को साधु बनाना है और शरीर से यावत् कर्म करना है।' महाराज जी के ईश्वर प्रेमाश्रम मे इन्हीं तत्वो का प्रकाश मिलता है।

स्पष्ट है कि ऐसे उदार, व्यापक, आधारभूत तत्वो का पीछा किन्ही पूर्वाग्रहो, पद्धतियो, प्रणालियो को लेकर नही किया जा सकता। रिक्त होकर ही साधक उनको अपने असली रूप मे ग्रहण कर सकता है। स्वभावत: महाराज जी किसी यम, नियम, उपासना, प्रक्रिया के बन्धनों मे साधक को आबद्ध नही करते। परन्तु जिज्ञासु तो उनके पास पूर्वसस्कार और रूढिगत धारणाओ के भार से लदा हुआ ही आता है। महाराज जी की अपार अनुकम्पा की यह बडी विशेषता है कि वे जिसको जिस जगह देखते हैं उसका

वही से उद्धार करते है। 'ईश्वर प्रेम पुष्पमाला' के इस द्वितीय भाग में उनकी यह प्रवृत्ति विशेष रूप से चरितार्थ हुई है। गुरु, गुरु मत्र, ईश्वर अवतार, उपासना, प्रतिमा पूजन, इष्ट निष्ठा, आहार, व्रत, सयम आदि के विषय में अनेक प्रचलित धारणाएं है और इन्ही धारणाओं के वश में लोग महाराज जी के पास आते है। महाराज जी खण्डन मण्डन नही करते, न शुष्क तर्क द्वारा ही अपनी बात मनवाने की कोशिश करते है। उनकी पहली प्रतिक्रिया यही होती है कि जिज्ञासु दुखी है, सन्तप्त है, कोई ओर छोर न पाने के कारण कोई आधार, अवलम्ब चाहता है। तर्क और सिद्धान्त निरूपण द्वारा उसे चमत्कृत तो किया जा सकता है परन्तु उसके द्वन्द्व, उसके अभाव, उसके जीवन की नीरसता दूर नही की जा सकती। अतएव उनका अपना ढग है साधक को बौद्धिक विश्लेषण की भूलभुलैया मे न डाल कर सीधे तथ्य की तह तक पहुँचा देना। किसी ने पूछा गुरु कौन है? उसको कैसे पहचाने? उनका उत्तर होता है 'आत्मा को आत्मा ही जगा सकती है। जब आत्मा मे धर्म पिपासा प्रबल होती है, भगवान को जानने की सच्ची जिज्ञासा, तीव्र लालसा जाग्रत होती है तो ग्रहीता मे एक आकर्षण पैदा हो जाता है उसी आकर्षण से आकृष्ट होकर वह प्रकाशदायिनी शक्ति से परिपूर्ण परमात्मा स्वय आकर खड़ा हो जाता है। यही गुरु है।' कोई जानना चाहता है कि मत्र क्या है? वैसे तो महाराज जी परम्परागत ढग से कोई मत्र नही देते। मत्र देने का अर्थ तो महाराज जी यही मानते है कि गुरु अपना ज्ञान-भक्ति-वैराग्य से परिपूर्ण मन शिष्य को दे दे और उसके अन्दर प्रविष्ट हुआ यह मन क्रियाशील होकर उसको परिवर्तित करता रहे, उसकी रक्षा करता रहे, वास्तविकता का प्रबोध कराता रहे, फिर भी अगर किसी शब्द या नाम का जप कोई कर रहा है तो इस जप की ठीक प्रक्रिया, उसका उद्देश्य और प्रभाव भी बताने से नही हिचकते क्योकि उनका लक्ष्य तो साधना मे सुविधा प्रदान करना और साधना को सजीव बना कर सोई हुई आध्यात्मिक शक्ति को जगाना

हैं। पूजा, ध्यान धारणा के विषय में तो बहुत से जिज्ञासु महाराज जी से रोज पूछते हैं। पुष्पमाला के इस द्वितीय भाग मे महाराज जी ने पूजाविधि, आसन, ध्यान, धारणा, वातावरण, प्रक्रिया आदि विषयो का विस्तृत और विशद वर्णन किया है। परन्तु जिज्ञासु की स्थिति, उसकी कठिनाइयों और विवशताओ को ध्यान मे रख कर जिस शैली का अनुसरण किया है वह पूर्णतया रचनात्मक है। साधक जहाँ भी हो, जो कुछ भी कर रहा हो उसकी स्थिति, उसके प्रयास की सीमाओ को आलोकित करते हुए, एक गहराई से दूसरी गहराई तक ले जाते हुए, आध्यात्मिक अनुभूति की तहो तक पहुँचा देते है। फलतः साधक मे एक नवीन जागरूकता आने लगती है, तथ्यो की एक नई पकड मिलती है, वास्तविकता से एक नया सम्पर्क स्थापित होता है। अन्ततोगत्वा गन्तव्य स्थान और अन्तिम उपलब्धि के विषय मे वह भली-भाँति सतर्क हो जाता है—'साकार मे निराकार छिपा हुआ है इसी को पकड़ना है। भावना में भावनातीत छिपा हुआ है उसी में डूबना है। गुण मे गुणातीत छिपा है। गुणातीत मे खो जाना है।'

महाराज जी की साधना सर्वागीण है। साधक के जीवन का कोई अग इतना तुच्छ या हेय नही है जिसके परिष्कार की ओर उनकी दृष्टि न हो। अतएव इस पुस्तक में उन्होने गहन आध्यात्मिक विषयो के साथ-साथ ऐसे विषयो पर भी जैसे आहार, व्रत, उपवास, व्यायाम, स्नान, सयम पर उपयोगी, व्यवहारिक, अनुभूत और गुणकारी जानकारी प्रदान की है क्योकि उनकी साधना का उद्देश्य तो है साधक के सम्पूर्ण जीवन का आमूल चूल रूपान्तरण।

'राम कहा हैं ?,' 'प्रेम दर्शन,' 'जीवन दर्शन,' और 'आश्वासन' शीर्षक प्रवचन जो पुस्तक के आदि में रक्खे गए है महाराज जी की अपनी शैली मे हैं। प्रेरणा की शक्ति और उत्साह की स्फूर्ति से सजीव ए अनमोल प्रवचन ग्रहणशील पाठक के मन को छुए बिना नही रह सकते। जिन भाग्यवान

स्त्री पुरुषो को उनके प्रवचनो को सुनने का अवसर प्राप्त हो चुका है वे जानते हैं कि महाराज जी की वाणी मे कैसी मर्मभेदी और साथ ही साथ सृजनकारी शक्ति है। इस सृजनकारी शक्तिके कारण गुरुर्ब्रह्मा वाली उक्ति तो उनके विषय मे अत्यन्त सार्थक है।

माता जी के सकीर्तन मे गाए जाने वाले गीतों की एक बड़ी सख्या पुष्पमाला के इस द्वितीय भाग के द्वितीय खण्ड में भी सग्रहीत हैं। इन गीतो की लोकप्रियता तो श्रोताओ की दिनो-दिन बढती हुई भीड ही से प्रकट है। परन्तु माता जी के लिए जो सब से अधिक सन्तोष का विषय है वह यह कि अपने शरीर और स्वास्थ्य की कुछ भी परवाह न कर के वे जो देश के कोने-कोने मे सकीर्तन सम्मेलनो का आयोजन कर रही हैं उसके वास्तविक उद्देश्य धीरे-धीरे परन्तु निश्चित रूप से सफलीभूत होते दिखाई दे रहे है। उनकी सकीर्त्तन प्रणाली का मुख्य उद्देश्य यह रहा है कि कीर्त्तन आध्यात्मिक साधना और आत्मानुभूति मे सहायक हो। आज उनकी मण्डली ही मे नही बल्कि उनकी मण्डली के बाहर भी अनेक रामरसमग्न और आत्मविभोर महिलाए है जिनके लिए भजन कीर्त्तन भगवत्प्राप्ति का एक साधन है। लय योग के जो बीज माता जी ने उनके हृदयो मे डाले है वे निश्चित रूप से अकुरित और पल्लविन हो रहे है और वह समय दूर नही जब उनकी सकीर्त्तन वाटिका काव्य, सगीत, अन्त सुख और समर्पण के पुष्पों से लहलहाती हुई दिखाई देगी।

ज्ञान, भक्ति और कर्म का अपूर्व समन्वय है उस साधना में जिसमें श्री महाराज जी अपने प्रभाव मे आने वाले साधको को नियुक्त करते है। परन्तु जिस ज्ञान की वे चर्चा करते हैं वह पुस्तको और शास्त्रो का ज्ञान नही। उसका प्रधान उद्देश्य अपने भीतर छिपे हुए प्रकाश के आलोक मे आना है, अपने अन्तस्तल में विराजमान दैवी शक्ति के प्रति जागरूक और उन्मुख होना है। कर्म के नाम पर वह कोई विशिष्ट कर्मकाण्ड के बजाय केवल उत्साह,

लगन, धैर्य और सेवाभाव की आशा करते हैं। भक्ति उनकी सच्चे अर्थों मे प्रेम स्वरूपा, अमृतस्वरूपा है जिसको पा कर साधक कृतकृत्य हो जाता है। अतएव उनकी साधना, उनका मार्ग कोई साधना या मार्ग न होकर जीवन और आत्मानुभूति की साधना है। फलत. ईश्वर प्रेमाश्रम मे प्रेम, समर्पण और सगीत की एक ऐसी अबाधित त्रिवेणी प्रवाहित रहती है जो

सबहि सुलभ, सब दिन, सब देसा, सेवत सादर समन कलेसा ॥

विनीत

देवेन्द्र सिह, एम० ए०, एल-एल० बी०
प्रोफेसर सी० एम० पी० डिग्री कालेज,
इलाहाबाद

प्रथम खण्ड

प्रवचन

राम कहां हैं ?

ऐ आराम चाहने वाले मन, इतना समय व्यतीत हो चुका । बाल्यावस्था, यौवनावस्था बीत चुकी, वृद्धावस्था सामने है, क्या तुझे आराम मिला ? कहाँ-कहाँ खोजा नगर-नगर, गाँव-गाँव, गली-गली, मन्दिर-मन्दिर, नही, देश देशान्तर, लोक-लोकान्तर—जहाँ तक पहुँच थी वहाँ तक प्रयत्न किया, फिर भी क्या तुझे आराम मिला ? किस-किस वस्तु मे ढूँढा—ससार की सुन्दर से सुन्दर, आकर्षक से आकर्षक पदार्थ मे ढूँढा । स्त्री, पुत्र धन, यौवन, मान, सम्मान मे यदि कभी कही क्षण भर के लिए आराम मिला भी तो वह उस बिजली के समान रहा जो क्षण भर के लिए चमकी और फिर बादलो मे विलीन हो गई । बाद मे दुख के ही आँसू बरसते रहे । पकड़ मे फिर भी कुछ न आया । प्रश्न बना ही रहा कि आराम कहाँ है ?

तू इस प्रश्न में उलझा क्यो है ? अरे ! आराम तो स्वय ही पुकार-पुकार कर कह रहा हैं, आ राम, आ राम, आ राम अर्थात् राम मे ही आराम है, बिना राम आराम कहाँ । राम के अतिरिक्त और कही आराम न है न मिलेगा ही । वास्तव मे ससार की वस्तुएँ भी केवल राम की ही होकर सुख दे सकेगी अन्यथा नही ।

प्रश्न सरल हो गया । कठिनाई हल हो गई । अब बात केवल इतनी रह जाती है कि राम क्या है, कहाँ है और उन्हे कैसे पाएँ ?

जिसको प्राप्त करके फिर और कुछ प्राप्त करने की इच्छा न रह जाय, ऐसा प्रतीत हो कि जैसे सब कुछ मिल गया है—जीवन का चैन मिल गया है, मन को अटल विश्राम मिल गया है, तन को पूरा आराम मिल गया है····· वही राम है ! अब इसका उत्तर रह जाता है कि राम कहाँ है और कैसे प्राप्त हो ?

इस प्रश्न का उत्तर सीधा है। क्या कोई पूछता है कि जो प्राप्त है उसे कैसे प्राप्त करे ? जो अन्दर ही बैठा हुआ है उसे कहाँ ढूंढे ? कैसा हास्यास्पद प्रश्न है कि जो पहले ही से प्राप्त है उसको कैसे प्राप्त करे ? अरे वह जो प्राप्त है ही जरा देखो प्राप्त है कि नही—अपने ही अन्दर, क्षण भर, कही बाहर न जाकर अपने को अपने ही में देखो। खोजा खोजा तू बहुत दिनों से कह रहा है किन्तु तू अभी तक खोया नही··· —खो क्यो नही जाता ?···· तू खोया—और वह मिला !

घण्टो समाधि का अभ्यास मै नही माँगता। ध्यान की एकाग्रता का लम्बा अभ्यास······ मै यह भी नही माँगता। बड़े व्रत, उपवास, बडी-बडी कठिन तपस्याएँ, साधनाएँ··· मै यह भी नही माँगता। हम तो चाहते है केवल एक क्षण भर की एकाग्रता, जैसे कोई चलते-चलते दो मिनट खडे होकर किसी से मिल ले, जैसे किसी को उसका प्रिय क्षण भर के लिए मिल जाय और फिर बिछुड जाय और इतने मे ही एक जीवन, एक प्राण, एक नया उत्साह देकर चला जाय और फिर मिलन की ऐसी आकाक्षा उत्पन्न कर दे कि उसमें मन अहर्निश अटका रहे··· कुछ इस प्रकार की साधना हम चाहते है—मामनुस्मर युद्धय च। जीवन की क्रियाएँ चलती रहे और स्मरण भी बना रहे। जिस प्रकार सृष्टि मे अनेक लहरे चल रही है उसी प्रकार प्रभु कृपा की लहरे भी चलती रहती है। अपनी अपार कृपा से वह स्वय कई बार हमसे मिलता है, हमी उससे नही मिलते। वह हमारी हर समय सुनने को तय्यार है हम ही उसकी नही सुनते। वह हर समय हमारा हर काम पूरा करने को तय्यार है हम ही उसकी इस कृपा को स्वीकार नही करते।

भगवत्प्राप्ति के विषय को इतना उलझाइए नही ! विषय बहुत ही सरल है। ससार की अन्य वस्तुओ की प्राप्ति मे तो कुछ कठिनाई हो भी सकती है परन्तु प्रभुप्राप्ति तो अत्यन्त सहज है। केवल जागते रहिए। कई बार उसका दर्शन होगा। जगलो मे जाने की आवश्यकता नही है, कार्यक्षेत्र से भागने की

आवश्यकता नही है। जहाँ जिस परिस्थिति मे प्रभु ने आपको रक्खा है वही उसको प्राप्त करना है, वही उसका दर्शन होगा, वही वह आपको प्राप्त होगा—जैसे माली जल लेकर स्वय वही पहुँचता है जहाँ उसने पेड लगा रक्खे है। जहाँ आप आए है वहाँ आप आये है या लाये गये है ? अदि आप वहाँ लाए गए है और रक्खे गये हैं और बँधे हुए है, हिल नही सकते, तो फिर इसका अर्थ यह हुआ कि किसी बड़ी ताकत ने आपको उस स्थान के लिए चुना है कि जिसे आप अपनी इच्छा से नही छोड सकते। यह विचार कि इसमे आप अपने को परवश पाते है आपको कष्ट क्यो देता है ? इसमे आप किसी महान् शक्ति के दर्शन क्यो नही करते ? किसी बडी इच्छा को क्यो नही देखते ? उस इच्छा के साथ अपनी इच्छा का योग करके योगी क्यो नही हो जाते ? इस तरह उसके साथ होकर नित नव रस का अनुभव क्यो नही करते ? आपका अपना कोई कार्यक्रम नही है उसका एक बना बनाया कार्यक्रम है जिसमे आपकी भी कुछ सेवा वाछित है। आपसे जो कार्य लेना चाहता है उसे आप प्रसन्नता से करते चलें और सभी लोग अपना-अपना कार्य भलीभाँति करते चलें, विश्व का कार्य पूरा हो, भगवान् की इच्छा पूरी हो, आप भी प्रसन्नता, यश और बडाई के भागी हो। कोई है जो हर समय अपना कार्य ले रहा है, बीच बीच मे आपकी थकान को भी दूर कर रहा है, आपको हँसा रहा है, खिला रहा है, विश्राम दे रहा है, जरूरत के सभी सामान दे रहा है। क्या यह विचार आपके हृदय को प्रसन्नता से भर नही देता कि आपका मालिक हर समय आपके साथ है, उसका सारा खजाना, उसकी सारी ताकत, उसका अनन्त प्यार, उसकी अखण्ड दया हर समय आपके साथ है ?

ऐ खेत में काम करने वाले किसान, उसकी दी हुई शक्ति को उसी की सेवा में अर्पित करके उसके दिए हुए काम को खुशी-खुशी करो। इस तरह उसको प्रसन्न करो और अपने भाइयों की सेवा करो······ ··तुम्हे इसी मे दर्शन होगा।

ऐ सडक पर कडी धूप मे काम करने वाले मजदूर, देखो तुम्हे प्रभु वहीं मिलेगा। उसी श्रम मे और उसी विश्राम मे उसकी प्राप्ति होगी। भागो मत, शिकायत मत करो। मन्दिर के किसी शान्त स्थान पर जाकर माला जपने की तुम्हे जरूरत नही है।

ऐ घर की गृहणियो, तुम जो सबेरे से रात तक घर की धूनी को तापती हो, विरोधी परिस्थितियो को भी हँसकर सहती हो, स्वय भूखी रहकर द्वार पर आए हुए भिखारी को भोजन कराती हो, अपनी थाली मे से एक-एक ग्रास निकाल कर अग्नि और गौ की सेवा करती हो, यहाँ तक की कौए और कुत्ते को भी खिलाती हो, सब की, सब कुछ सह कर सबकी सेवा करती हो, तुम तपस्विनी हो! तुम अपने कर्त्तव्य पालन से भगवान को प्रसन्न करो! तुम्हे गगातट की ठडी वालुका मे लक्कड जलाकर धूनी तापने की आवश्यकता नही है, तुम्हे तुम्हारा प्रभु वही मिलेगा!

ऐ ससार के विभिन्न क्षेत्रो मे कार्य करने वाले कर्मचारियो, तुम्हे अपना स्थान, अपना कार्य छोडकर किसी सुनसान जगह पर जाकर समाधि लगाने की आवश्यकता नही है। तुम्हारा कर्म ही तुम्हारी पूजा है। अपना धर्म, अपना कर्त्तव्य अच्छी प्रकार से पालन करने के वाद क्या अन्तरात्मा मे एक प्रसन्नता का अनुभव नही होता? इस प्रसन्नता मे ही भगवान् का दर्शन है।

ऐ रणक्षेत्र मे लडने वाले सिपाही, रणभूमि मे भूख और प्यास, सर्दी और गर्मी, कडी से कडी यातना सहकर दूसरो की रक्षा के लिए, स्वधर्म का पालन करते करते मर जाना ही जीवन है। इन्ही कठिनाइयो के बीच तुम्हे अपना प्रभु अपने साथ दिखाई देगा। जहाँ तुम्हारी शक्तियाँ धर्म के निर्वाह मे क्षीण हो जाती है उस समय पुकारो, उस समय देखो प्रभु एक अनन्त उत्साह, शक्ति के एक अविरल प्रवाह, धैर्य और साहस को लिए हुए हर समय दिखाई देगा। तुम्हे दर्शन वही होगा, तुम्हे हिमालय की गुफाओ मे जाने की आवश्यकता नही!

होश में रहो, जागते रहो, अनेक रूप मे, अनेक भाव मे, अनेक रग में, उसका दर्शन होता रहेगा। कभी असम्भव सम्भव और सम्भव असम्भव हो जायगा। कभी वने बनाये इरादे टूट जायँगे और कभी टूटे हुए फिर जुड जायँगे। हर घडी वह किसी लीला के रूप मे खेलता हुआ दिखाई देगा—कभी प्रगट, कभी अप्रगट, दोनो भावो मे वह खेलता हुआ दिखाई देगा ! वह हर समय आप के साथ है। यही आपका राम है और जव तक आपका राम इस रूप मे प्रगट नही होगा, हर देश, हर काल, हर परिस्थिति मे आपका जीवन साथी होकर आपका साथ नही देगा आपके रोम-रोम मे समा नही जायगा, अपने प्रेम पाश मे आपको बाँध नही लेगा, तब तक जीवन का लक्ष्य, अंतिम शान्ति, अंतिम चैन, वास्तविक आराम नही मिलेगा ! ओ३म् शम् !

प्रेम दर्शन

अरे रस के प्यासे भ्रमर ! इतने समय से अनेक पुष्पो के रस रूप गन्ध स्पर्श आदि को भोगते भोगते तुम अभी तक न अघाए ? इतना रसपान किया किन्तु तुम अब भी अतृप्त, असतुष्ट, प्यासे के प्यासे हो ? ... .

मैं तो उससे प्रेम कर रहा हूँ जो मेरे जीवन का लक्ष्य है - ... नही नहीं, यह प्रेम नही है, यह तो प्रेम के पीछे छिपी हुई वासना है जो तुम्हे दर दर भटका रही है । प्रेम का तो सिद्धान्त है कि 'एक गुल पर हो फिदा, बुलबुल तू हरजाई न बन !'

तो फिर प्रेम और वासना में अन्तर क्या है ? अरे महान् अन्तर है । प्रेम असीम है, अखण्ड है, अमर है, अनन्त है, पवित्र है । वासना तुच्छ है, अशुद्ध है, सीमित सुख देने वाली, प्राणी को अन्धकूप मे फेक देने वाली है, शक्ति का शोषण करके शरीर को जरा अवस्था मे पहुँचाने वाली जोंक है और फिर अन्त मे हाय हाय करते हुए जीव को गहरी अँधेरी खाई मे फेक देने वाली मृत्यु है । प्रेम जीवन है, प्रकाश है, आत्मा से उत्पन्न होने वाला आह्लाद है ! वासना इन्द्रिय जन्य है, क्षण भर भोगो का सुख देकर भोग इच्छा की कठिन बेड़ियो मे बाँध कर जन्म जन्मान्तर मारने वाली पिशाचिनी है, आत्मा से दूर ले जाकर तड़पा तड़पाकर मारने वाली डायन है । हाँ देखने मे, चेष्टा मे एक ही प्रकार के होते हुए भी प्रेम और वासना भिन्न-भिन्न है । ये केवल परिणाम से ही पहचाने जाते है । वासना इन्द्रिय जन्य होने से सीमित सुख देने वाली है, प्रेम आत्मा जनित होने से अविरल सुख देने वाली है क्योंकि आत्मा कभी मरता नही है । इन्द्रिय तो शरीर के साथ यौवन, जरा और मृत्यु को प्राप्त होती है इसलिये सदा बहने वाला प्रवाह देने मे यह असमर्थ है । वासना के

दुर्गन्ध से मन अपवित्र हो जाता है, प्रेम की सुगन्ध से मन पवित्र हो जाता है, तृप्त हो जाता है। यह कहा जा सकता है कि प्रेम मे भी तो यह देखा गया है कि प्रेमी अतृप्त रहता है, तडपता है, रोता है, कलपता है, दीवाना बनकर मारा मारा फिरता है, अशान्त रहता है, वियोग से व्यथित होता है, बड़े कष्ट उठाता है। क्या अन्तर रहा जब कि वह भी जन्म जन्मान्तर मे मुक्त नही होता ?

प्रमी अपने प्रियतम को जब प्राप्त करता है तो इतना सुख पाता है कि उसे और प्राप्त करना चाहता है। फिर और प्राप्त करके और अधिक प्राप्त करना चाहता है। जितना ही प्राप्त करता जाता है उतना ही और अधिक प्राप्त करने की इच्छा बढ़ती जाती है। पीकर और पीने की इच्छा, देखकर और देखने की इच्छा, मिलकर और मिलने की इच्छा ही प्रेमी की अतृप्ति है, अशान्ति है--'तेरे कारन वन वन डोलूँ धरि जोगिन को वेष'--यही उसका दर दर भटकना है। असह्य विरह वेदना मे अश्रु का प्रगट होकर प्रिय का सारा हाल कहना, यही आँसुओ का काम है क्योकि प्रेम स्वय तो बोलता नही। ससार की वस्तुओ के लिए रोने मे तो दुख है किन्तु प्रियतम के लिए रोने मे एक सुख है, प्रेमी तो इसे छोडना नही चाहता !

फिर वियोग मे कौन है ? वही कि जिसका यह वियोग है। इस तरह फिर सयोग हो गया यानी वियोग मे भी सयोग रहता है ! और सयोग मे प्रिय के और अधिक सयोग की इच्छा रहती है ! इस तरह सयोग रहते हुए भी वियोग रहता है। दूसरे शब्दो मे सयोग मे वियोग और वियोग मे सयोग रहता है या यो कहिए कि दोनो अवस्थाओ मे योग रहता है, यानी नित्य प्राप्त रहता है चाहे पास हो चाहे दूर, हर समय साथ है अर्थात् प्रेम मे न देश है, न काल न परिस्थिति। ये तीनो जो वासना की तृप्ति मे बाधक है प्रेमी मे है ही नही। इसलिए प्रेम अनन्त है, अमर है, अखण्ड है, अछेद्य है, अभेद्य है, स्वय भगवान् है। प्रिय अपने प्रियतम को पाकर इतना सुख पाता

है कि ससार का सुख उसके लिए तुच्छ हो जाता है और क्षरण भर के वियोग मे इतना दुःख पाता है कि ससार का सारा दुःख उसके लिए गौरण हो जाता है। इस तरह से प्रेमी ससार के सुख-दुःख से नित्य मुक्त है। प्रियतम अपने प्रिय को तत्क्षरण मुक्त कर देता है कल का वादा नही करता, अगले जन्म का भी नही।

फिर बार-बार जन्म क्यो होता है ? प्रिय को प्राप्त करने की इच्छा अतृप्त रह गयी, प्राप्त करके और प्राप्त करना चाहता है। सब इच्छाओ का नाश अकेली एक इच्छा ने कर दिया कि यह इच्छा नष्ट नही हुई। इस इच्छा के फलस्वरूप पुनः जन्म हुआ। प्रिय को प्राप्त करने की इच्छा लेकर ही जन्म हुआ इसलिए अन्य कोई भोग अपनी ओर खीच न सका। सारे जीवन मे पुनः पुनः उसको प्राप्त किया, उसी को खोजा, उसी को पाया, किन्तु उसे फिर और प्राप्त करने की इच्छा शान्त न हुई। इसलिए पुनः इसी इच्छा को लेकर शरीर छोड़ दिया और इसी अमर इच्छा को लेकर दूसरा शरीर धारण किया। एक इच्छा का रूप होकर बारम्बार आना जाना, कभी न मरना—यही इच्छा रूप अमरत्व है !

यह इच्छा शान्त क्यो नही होती ?—— इसलिए कि प्रियतम अनन्त है। एक पी कर नही अघा रहा है दुसरा पिला कर नही अघा रहा है। एक माँग कर तृप्त नही हो रहा है दूसरा देकर तृप्त नही हो रहा है। एक का प्यार पाकर जी नहीं भरा एक का प्यार देकर जी नही भरा। अनन्त प्यास है तो जल भी अनन्त है। अनन्त जल है यह बिना अनन्त प्यास के प्रमारिगत ही नही होता। एक अनन्त भिखारी है एक अनन्त दाता। अनन्त दाता ही केवल अनन्त भिखारी की झोली भर सकता है।

अर्जो समा कहाँ तक तेरी वसअत को पा सकें !

भक्त कहता है—

अरे ए दिल ही है मेरा कि तू जहां समा सके।

नही समाता तो अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड मे नही समाता, समा जाय तो एक भक्त के नन्हे से दिल मे ! इच्छा तो वही त्याज्य है जो प्रभु मिलन म बाधक हो। जो प्रभु मिलन मे साधक हो वह इच्छा कहाँ रही।

फिर भी बधन तो है ? दु.ख है, कष्ट है, पीड़ा है। बधन तो उसको कहते है जिससे मुक्त होने की इच्छा हो। जिसमे बँधकर सारा जीवन व्यतीत करने की प्रवल इच्छा हो क्या उसको भी बन्धन कहेगे ?

दु ख उसको कहते है जिससे छुटकारा पाने की इच्छा हो, जिसे छाती से लगाये रहने की इच्छा हो, जिससे मुक्त होने की कभी इच्छा न हो क्या वह भी दु ख है ? नही वह तो सुख का भी सुख है।

कष्ट और पीडा मे उस प्रियतम की याद है और उसकी याद ही जीवन है, उसे भूल जाना तो मृत्यु है।

आवा जीवा बिसरे ही मर जावा

इसलिए पीडा तो प्राण है, पीडा तो जीवन है, पीडा मे पीड़ा कहाँ ? जिसको तू पीर करता है वह तो वह 'पीर' (गुरु) है जो तुझे प्रेम की महान् मजिल की ओर लेता चला जा रहा है।

तो फिर इस पवित्र प्रेम रस की उपलब्धि कैसे हो ?

जब बूंद अपने आपको सागर को अर्पित कर देती है तो सागर का सब कुछ प्राप्त कर लेती है। कोयला जब अपने आपको अग्नि को अर्पित कर देता है तो सम्पूर्ण अग्नि को अपनी दाह शक्ति और प्रकाश के साथ प्राप्त कर लेता है। जब भक्त अपने आपको भगवान् को अर्पित कर देता है तो वह अपने प्रभु को प्राप्त कर लेता है। जीव मात्र का उसमे अर्पित हो जाना, उसके सामने आत्म समर्पण कर देना, अपनी हस्ती को मिटा देना—यही उसको प्राप्त कर लेना है। इसी को समर्पण योग कहते है। इसी समर्पण योग द्वारा ही प्रेम योग होता है।

आप कहेगे कि यह तो आपने बडी कठिन बात बताई। तो क्या आपने इसको खिलवाड समझ रक्खा है ?

बच्चों का नहीं खेल है मैदाने मोहब्बत
जो आए यहाँ सर से कफ़न बाँध के आए

यह तो सर का सौदा है 'शीश कटावे भुँइ धरै, तब बैठे घर माहि'। क्या ? सिर देना पड़ेगा ? कौन सी बड़ी बात है। यह तो वह वैसे भी ले लेगा। हाँ इच्छा पूर्वक दे देने मे तो कुछ फल भी है। अन्यथा जब वह काल बन कर ले लेता है तब तो कुछ भी फल नही मिलता। दीपक की प्रेमाग्नि मे जलकर पतगा उसको प्राप्त कर सकता है। इसमे तो बडी पीड़ा है ? क्षण भर की पीड़ा यदि अनन्त सुख लाने वाली हो तो यह कोई कठिन बात नही है।

सोज़िश है एक दम की औ राहते दवामी
परवाने का ए मुश्किल कुछ इम्तहाँ नहीं है।

नही नही इसमें तो बहुत जलन है, बहुत कष्ट सहना पड़ेगा। क्या हम किसी और दूसरे ढग से प्राप्त नही कर सकते ?......

हम तो बुलबुल बनकर पुष्प से प्रेम करेंगे। जब बुलबुल बनकर पुष्प की ओर बढ़े तो काँटों ने सारा शरीर छील दिया। खून से लथपथ हो गये, पीडा से व्याकुल हो गए। यह तो बहुत कठिन है। हम दूसरे ढग से लेगे।

हम तो चन्दन बनकर अपने प्रभु के अग लगेंगे। जब चन्दन जल डालकर पत्थर पर घिसा जाने लगा तो असह्य कष्ट हुआ। फिर घबड़ाया और कहने लगा कि भाई यह तो बहुत कठिन है।

हम तो प्याला बनकर उनके ओठों से लगेंगे। जब प्याला बनाने के लिए मिट्टी की गुँधाई होने लगी, पैरो के नीचे रौदे जाने लगे, पुराना सारा आकार

मिटाकर जब नया आकार दिया जाने लगा, आग मे पकाया जाने लगा तो फिर वह वेदना भी असह्य हो गई। घबडा कर कहा कि भाई हम तो सुरमा बनकर उनके नेत्रो मे लगेगे और इस तरह उनको प्राप्त करेगे। जब सुरमे की घुटाई खरल मे होने लगी तो फिर चिल्लाया कि भाई यह तो सब से कठिन है।

अपने प्रियतम से किसी भी मार्ग से जाकर मिलना चाहे, बिना मिटे वह प्राप्त नही किया जा सकता। मार्ग की कठिनाइयो से भयभीत होता है तो उस तक पहुँच नही पाएगा।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:

बलहीन उसको प्राप्त नही कर सकता। तू इतना घबराता क्यो है ? चोट खाने से इतना डरता क्यो है ?

तू बचा बचा के न रख इसे तेरा आइना है वो आइना
जो शिकस्ता हो तो अजीजतर है निगाहें आइनासाज में।

टूटा हुआ दिल ही उसको पसन्द है तो क्या किया जाय !

ऐ मन रूपी भ्रमर, अनेक पुष्पो पर जब तक मारा मारा फिरता है तब तक तुझे चैन नही मिलेगा। क्षरण भर का रस तेरी अनन्त प्यास को बुझाने मे समर्थ नही है। तेरा अनादि प्रियतम तो कमल है। कौन सा कमल ? भगवान का चरणारविन्द रूपी कमल। जब तक तू अपने प्रभु के चरण कमलो का भ्रमर बनकर उसमे इतना विलीन नही हो जायगा, उस रस का पान करने मे इतना तन्मय नही हो जायगा कि अपने प्राणों को भी निछावर करने को तय्यार हो जाय तब तक तेरी अनन्त प्यास नही बुझेगी। अखण्ड सुख और अखण्ड शान्ति नही मिलेगी।

मुहब्बत जिन्दगी अपनी मुहब्बत है खुदा अपना
मुहब्बत में जो मिट जाए न फिर वह शादमा क्यो हो

प्रेम मेरा जीवन है, प्रेम मेरा भगवान् है, प्रेम मे मिट जाना जीवन की सबसे बडी खुशी है।

जीवन दर्शन

मेरे प्रिय ....तू इतना दुखी क्यो है ?———तेरे अन्दर तो स्वय एक आनन्द का स्रोत बह रहा है ।

तू इतना अशान्त, उलझा हुआ क्यो है ?———तेरे अन्दर तो अखण्ड शान्ति स्वय विराजमान है ।

तू इतना दुर्बल और अशक्त क्यो है ? जब कि तेरे अन्दर स्वय सर्वशक्तिमान् बैठा हुआ है ।

तू इतना भयभीत क्यो है ? तेरे अन्दर, तेरे बाहर, तेरे साथ-साथ वह महान् तेज-बल वाला, तेरे जीवन का रक्षक नित्य स्वय तेरी रक्षा कर रहा है ।

तू दर-दर का भिखारी क्यो है ? तू तो बादशाह का बेटा है ।

तू चिन्तित क्यो है ? तेरे मालिक का खजाना तो नित्य भरा हुआ हे और वह तेरे लिए ही है ।

तू भवसागर की भयानक तरगो से घबरा क्यो रहा है ? कि जब उस पार करैया के कृपा की नौका तुझे पार करने को तयार खडी है ।

तू इतना उदास क्यो है ? जब तेरे अन्दर वह परम सौन्दर्य, वह रस रूप स्वय स्थित है ।

तू अन्धकार में भटक क्यो रहा है ? तेरे अन्दर प्रकाश की ज्योति स्वय जल रही है ।

तू अज्ञान में ठोकरें क्यों खा रहा है ? जब ज्ञान का भाण्डार तेरे अन्दर स्वय रक्खा हुआ है ।

तू ससार के झूठ, अपमान, राग, द्वेष, ईर्ष्या, सताप से व्याकुल क्यों है ? जब कि तुझे अपने से अधिक स्नेह करने वाला, तेरा प्रियतम, नित्य तुझे अपने पवित्र स्नेह से भर देने के लिए तेरा बाट जोह रहा है ।

तू मेरे पास आता क्यो नही ? वहाँ बैठा-बैठा क्या रो रहा है । मैं तेरे जीवन का जीवन हूँ, प्राणो का प्राण, प्राणनाथ हूँ, सुख का सुख हूँ—तू मेरे पास आ । मै तुझे सब कुछ दूँगा । मै तुझे खुशियो से भर दूँगा । मैं तुझे वह वस्तु दूँगा जिसे प्राप्त करने के बाद फिर और कुछ प्राप्त करना बाकी नही रह जाता ।

जीवन के प्रति पल, प्रति क्षण आपको कुछ विचित्र अनुभव होत है—कभी बडी अशान्ति और कभी घोर शान्ति, कभी बडी उदासी और कभी बडी प्रसन्नता, कभी बडी दुर्बलता, कभी बडी शक्ति, कभी बहुत आराम, कभी बडी बेचैनी, कभी बड़े सुन्दर दैवी भाव, कभी बडे विकृत आसुरी भाव आते रहते है । इन्ही घडियो में आप यदि ध्यानपूर्वक विश्लेषण करे, तो अपने स्वरूप को बहुत कुछ समझ पाएगे । मै पूछता हूँ कि 'अशान्ति' के पहले क्या थी ? आप कहेगे 'शान्ति', तो फिर शान्ति से ही अशान्ति उत्पन्न हुई । और अशान्ति के बाद क्या है ? आप कहेगे शान्ति; यानी अशान्ति शान्ति मे उत्पन्न होती है और शान्ति मे फिर लय हो जाती है । इसका अर्थ यह हुआ कि उस 'शान्ति' तत्व मे जब चाहना की, कामना की, भावना की, विचार की तरग उठती है तो वह अशान्त हो जाता है और इच्छा, कामना, विचार आदि की तरग जब शान्त हो जाती है तो फिर शान्त स्वरूप मे स्थित हो जाती है । इसका अर्थ यह हुआ कि वस्तुत आप स्वय शान्ति स्वरूप है, इच्छाओ के कारण विचारो के तरग उठते है वही क्षण भर के लिए अशान्ति पैदा कर देते हैं । विचारों के, कामना के समाप्त होते ही अशान्ति भी समाप्त हो जाती है और आप पुन शान्त हो जाते है ।

इच्छाओ के, कामनाओ के जन्म का कारण क्या है ? दृश्य जगत । जब मन दृश्य-मुखी होता है तो दृश्य से आकर्षित होता है, उसमे आसक्त होकर

मनोवाछित फलो को प्राप्त करने की इच्छा करता है, अपने आप से दूर यानी अन्तर से वहिर हो जाता है । फल की उपलब्धि के साथ-साथ तरग नष्ट हो जाती है, जीव पुन अपने आप मे आ जाता है और अपनी शान्तिसुख का अनुभव करने लगता है ।

इस प्रकार कई बार अपने आप से वियोग हो जाता है और कई बार अपने आपसे सयोग हो जाता है । सयोग की घडियो मे आप अपने स्वरूप में स्थित होते है और यदि आप सजग है तो ये घडियाँ दिन मे कई बार आती है, इन घडियो को यो ही न जाने दें, उनमे क्षण भर स्थिर होकर देखे कितना सुख मिलता है, कितनी शान्ति मिलती है । नित्य क्रियाओ मे श्रम करते-करते कभी थक कर जब दो क्षण कुछ नही करते, तो कितना अच्छा लगता है । इन 'कुछ नही करने' की घडियो मे आप पुन शक्ति से छू जाते है और अपने कार्य मे फिर लग जाते है । सारे दिन काम करते-करते जब रात्रि मे शय्या पर गिरते है तो कितना सुख मिलता है । जैसे-जैसे चेष्टाएँ समाप्त होती जाती हैं, शिथिलता बढती जाती है, सुख बढ़ता जाता है, शान्ति प्रगाढ होती जाती है, प्यासा पानी और भूखा जब भोजन पाता है तो कितना आनन्द प्राप्त होता है । इन अवसरो को खोएँ नही, इन्ही मे कुछ क्षण एक बार अपने स्वरूप का दर्शन करे । जब आप मे कोई इच्छा नहीं होती, कोई विचार नहीं होता,, कुछ नही करते--अपने आप मे स्थिर रहते है तो एक अलौकिक सुख का अनुभव होता है । इस सुख का, इस रस का पान दिन मे कई बार हो सकता है । जब कुछ मन की पकड इस रस में हो जाय तो फिर कुछ घड़ी विशेष रूप से इसी रस प्राप्ति के हेतु निर्धारित करके निरतर अभ्यास प्रारम्भ कर दें । इन घड़ियो में आपको कुछ करना नही है । मत्र, पूजा, ध्यान, भजन कुछ नही करना है । केवल शून्य होकर अपने आपका रस लेना है, उसी मे विभोर हो जाना है--खो जाना है--वहाँ स्मरण के बजाय सब कुछ विस्मरण कर देना है । यदि विचार आते है तो आने दीजिए, उनसे छेड-छाड न कीजिए । उन्हे जैसे आए है वैसे चले जाने दीजिये । कुछ ही दिनो मे सजग एव सच्चे

प्रयत्न से ही आप एक प्रकार के नशे का अनुभव करेगे । आपको बडी मस्ती आएगी, साथ ही एक बेपरवाही भी जाग्रत होगी । जब अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, अपने आप का होश जाग्रत हो जाता है, तो फिर अपने आप मे स्थिर होकर जब दृश्य देखता है और क्रियाओ मे रत होता है तो फिर वह दृश्य में आसक्त नही होता, केवल उसका देखनेवाला रहता है । जब तक हम केवल दृश्य के देखने वाले है तब तक आनन्द भग नही होगा । जब दृश्य मे आसक्त होकर उसके पीछे भागेगे तभी दुख, अशान्ति, उलझने आएँगी, अन्यथा नही । इस तरह अपनी मस्ती मे, आनन्द मे, नशे में विभोर, अपने स्वरूप मे स्थिर होकर जगत का सारा कार्य करते जाइए । आँख खोले, काम करते हुए, खाते-पीते, हँसते-बोलते, लडते-झगडते, अपने स्वरूप का कई बार होश रखते हुए चले जाइए· आपके आध्यात्मिक जीवन और सासारिक जीवन मे कोई विरोध नही होगा । जंसे-जसे इस अनुभव मे गहराई आती जायगी वंसे-वंसे विचित्र अनुभव होने लगेगे । ऐसा लगेगा जंसे सब कुछ करते हुए कुछ नही करते । हर समय आनन्द और शान्ति बनी रहेगी । कर्तृत्व मे अकर्तृत्व जाग पड़ेगा । अज्ञान, अन्धकार, मोह, शोक, दुर्बलता, भय, चिन्ता, सब भाग जायँगे । प्रकाश, आनन्द, शान्ति, निश्चितता, साहस, प्रसन्नता, मस्ती आपके साथ नित्य रहेगी । जीवन का अभाव दूर हो जायगा और एक ऐसे भाव की प्राप्ति होगी कि जिसकी प्राप्ति के बाद और कुछ पाना बाकी नही रह जायगा ।

जब आपके अन्दर शक्ति जाग्रत हो जायगी तो फिर विपरीत दशाओ में मन विक्षिप्त नही होगा । पक्ष के अथवा विरोधी, दोनो भावो को स्वीकार कर सकेंगे । इस तरह जीवन के विरोध (Contradictions) समाप्त हो जायगे । आप योगी हो जायंगे । अहर्निश आनन्द मे स्थित होगे और एक दिन जिस दिन जीवन लीला समाप्त होगी बडे आराम से नाटकशाला से निकलकर अपने धाम चले जायँगे, अटल विश्राम को प्राप्त होगे ।

आप 'सच्चे आप' बने । ओ३म् शम

आश्वासन

प्रिय सखे, मै जानता हूँ कि तुम ससार की पीडाओं से व्यथित हो, बेचैन हो। नाना प्रकार की समस्याओं मे उलझे हुए हो, भयभीत हो, शोक ग्रसित हो। जीवन में शान्ति और सुख के लिए दर-दर भटक रहे हो। किन्तु इसकी कोई औषधि नही है और यदि कोई औषधि है तो वही जिसकी तरफ तुम्हारा ध्यान अभी तक नही गया है।

जब तक अपने आत्मा राम को जोकि तुम्हारे प्राणों का प्राण, तुम्हारे सुख का सुख, तुम्हारे जीवन का जीवन है तुम्हारा सबकुछ--माता, पिता, बन्धु, सखा, गुरु सब कुछ है--तुम्हारा परम हितैषी है--जब तक उसको प्राप्त नही कर लोगे, तब तक तुम्हे चैन, शान्ति और आनन्द, नहीं मिलेगा। यह आत्माराम ही तुम्हारा भगवान है, तुम्हारा प्रभु है, तुम्हारा प्रियतम है। उससे मिल कर जी की सारी जलन दूर हो जायगी।

भगवान हमारे अपने आप है और हम उनके अपने आप है। इसलिए उनका अपने से सहज प्रेम है। वे तुम्हे इतना प्रेम करते है, वे तुम्हे इतना प्यार करते है कि जितना तुम्हारे माता पिता ने भी न किया होगा। वे तुम्हे तुम्हारे भाई बहन से अधिक प्यार करते हैं। ससार मे पति और पत्नी का जितना प्रेम है उससे सहस्त्रों गुना अधिक प्यार वे तुम्हे करते है। वे तुम्हे बेहद प्यार करते है इसलिए तुम उन्हीं से प्यार करना सीखो। यदि कहो कि ससार मे भी तो प्रेम है तो वह स्वार्थमय है यानी ससार तुमसे प्यार करता है तो अपनी खुशी के लिए लेकिन भगवान का प्रेम निस्वार्थ है यानी वे तुमसे प्यार करते है तुम्हारी खुशी के लिए, तुम्हे सुख देने के लिए। ससार मे प्रेम है ही नही और यदि है भी तो बूँद

मात्र ही। क्या ओस की बूदो से तुम्हारी प्यास बुझ सकती है ? नही। वह तो तभी बुझेगी जब प्रेम का समुद्र मिलेगा कि जहाँ हम जी भर कर पिएगे। इतना प्रेम तो तुम्हे भगवान से ही मिलेगा जो प्रेम के सागर है और जिनका असीम प्रेम तुम्हारी जिन्दगी को खुशियो से भर देगा।

प्रभु के पास अखन्ड आनन्द है, अनन्त मस्ती है बहुत नशा है। वह जिसको पी कर ससार का सारा दुख भूल जाय। तुम उनके सामने खुला हुआ हृदय ले कर जाओ, तुम्हे मस्ती से इतना भर देगे कि तुम्हे और कुछ प्राप्त करने की इच्छा न रह जायगी। इस प्रकार जीवन मे जो अप्राप्ति का दुख है वह सब समाप्त हो जायगा और तुम सदा के लिए मस्त हो जाओगे।

कभी-कभी तुम्हारे पास पैसे नही होते, तुम्हारी जेबे खाली होती है लेकिन तुम परेशान क्यो होते हो। जब मालिके दो जहान ने अपने शाही खजाने को खोल -खोल कर कई बार दिखा दिया है तो फिर अपने न मिलने का सन्देह क्यो करते हो। तुम्हे उस समय तक चिन्ता नही करनी चाहिए जब तक तुम्हारे मालिक का खजाना भरा हुआ है। यह खजाना हमेशा भरा हुआ है, यह खजाना हमेशा भरा रहेगा। इस लिए तुम्हे कभी चिन्ता नही करनी पड़ेगी।

तुम डरते हो इसलिए कि तुम मालिक को अपने साथ नही देखते। जब तक तुम उसकी बादशाहत के अन्दर हो तब तक तुम्हे डरने की जरूरत नही। उसकी बादशाहत हमेशा रहेगी, हर जगह रहेगी इस लिए तुम्हें कभी भी और कही भी डरने की जरूरत नही।

तुम दर-दर की भीख माँगते फिरते हो इसलिए कि तुम उस अनन्त दाता को पहचानते नही। जो उसके दर का भिखारी हो वह दुनिया का बादशाह है। इसलिए तुम्हे उसे छोड़ कर किसी से नही माँगना चाहिए।

जीवन में तुम्हे जब भी जरूरत हो जहाँ भी जरूरत हो तुम उसी से माग सकते हो वह हर जगह है ।

तुम उससे माँगने में सकोच क्यो करते हो ? उसने एक सकल्प मात्र से अनन्त कोटि ब्राह्मण्ड की रचना कर दी । उसके लिए यह कुछ नही था। केवल एक खेल मात्र था । तुम्हारी जरूरत का सामान देने मे उसे क्या कठिनाई है ? अपने जीवन मे विश्वास रक्खो, वह तुम्हारी हर कमी, हर आवश्यकता की पूर्ति करता रहेगा । हा, यह हो सकता है कि तुम्हारी माँग को पूरा न करे क्यो कि वे बन्धन कारक है किन्तु आवश्यकताओ की पूर्त्ति तो अवश्य होती रहेगी ।

यदि तुम ऐसे घोर सकट मे फँस गए हो जिससे छुटकारा पाना कठिन हो रहा है और रक्षा का कोई उपाय सूझ नही रहा है तो जहाँ तक हो सके शरीर के बल का प्रयोग करना, वह भी थक जाय तो फिर अपन दोस्तो को बुलाना, वह भी काम न आए तो अपने सबधियो को बुलाना, वे भी न सुनें तो देवी देवताओ को बुलाना, अपने मित्रो को पुकारना, जहाँ तक पुकार सकते हो पुकारना । पुकारते-पुकारते जब थक जाना और देखना कि तुम्हारी रक्षा के लिए अब कोई नही आ रहा है तो फिर भगवान को पुकारना । उन्होने अपने जन से वादा किया है कि वे अवश्य आएगे ।

तुमने सासारिक वस्तुओ के लिए अपने प्रभु को छोड दिया है । सृष्टि की रचना में जितनी वस्तुए रची गई है वे सब तुम्हारी आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए ही बनाई गई हैं । समय-समय पर स्वाभाविक रूप से आती रहेगी । इनके लिए अपने मालिक को छोडना ठीक नही, हाँ अवसर आ जाय तो मालिक के लिए इन सब को छोड देना ठीक है क्यो कि ये सब नाशवान् है और फिर यदि मालिक साथ है तो फिर ये सब सामान तो बहुत आ जायगा ।

भगवान तुम्हारी हर मागी हुई वस्तु को देना चाहते है किन्तु वासना से रहित करके ताकि तुम इन वस्तुओ के सुख को भोग सको अन्यथा ये वस्तुए तो तुम्हे भोग डालेगी, तुम्हे समाप्त कर देगी। वासना से मुक्त करने मे'जब कुछ समय लग जाता है तो तुम यह समझते हो कि भगवान तुम्हे देना नही चाहते लेकिन बात यह नही है। वस्तु तो तुम्हारे लिए ही बनाई गई है और वह समय-समय पर तुम्हे मिलती रहेगी।

जब उसने भूख पैदा की तो साथ ही भोजन भी पैदा किया, बल्कि भोजन पहले पैदा किया और भूख बाद मे। प्यास के साथ पानी पैदा किया। प्यास होगी और पानी नही मिलेगा, भूख होगी ओर भोजन नही मिलेगा यह सोचना कितन। हास्यप्रद है। विश्व के अनन्तानन्त प्राणी, असख्य जीव सभी भोजन कर रहे है। तुम्हे अपने लिए रोटी न मिलने की चिन्ता क्यो ? तुम्हारे जन्म के समय तुम्हारे माँगने और रोने के पहले ही क्या दूध का प्रवन्ध नही कर दिया था और जब तुम अपना भोजन उपार्जन करने के योग्य नही थे क्या तुम्हे उस समय रोटी नही मिलती थी ? अब तुम थोडा बड़े हो गए हो। तुम रोटी के लिए परीशान न हो।

तुम प्रभु इच्छा के विरुद्ध चलते हो फिर भी तुम्हे प्रभु ने आज तक नही छोडा। तुम्हारे साथ-साथ हर समय रहता है लेकिन यदि कभी वह तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध चलता है तो तुम तुरन्त उसे छोड कर भागने को तैयार हो जाते हो। क्या यही तुम्हारा इनसाफ है ? तुम्हारा कल्याण इसी मे है कि तुम उसकी इच्छा के सामने अपना सर झुका दो।

तुम ससार वालो से प्रेम करते हो उनको अपना मित्र और हितैषी समझते हो जब कि तुम यह बात अच्छी तरह समझते हो कि यह सब स्वार्थी है, ये केवल धन और यौवन के साथी है। भगवान तुमसे प्रेम करते हैं निः स्वार्थ भाव से, तुम्हारे ही सुख के लिए, तुम्हारे ही स्वार्थ

की पूर्त्ति के लिए । फिर भी तुम भगवान से प्रेम नही करते । तुम यह सब कुछ जान और समझ कर भगवान से ही प्रेम करना सीखो । तुम्हारा जी खुशियो से भर जायगा ।

जो कुछ मालिक तुम्हे दे रहा है उसे प्रसन्नता से ग्रहण करना, धन्यवाद और कृतज्ञता के साथ लेना । शिकायत न करना । हॉ आगे और मॉग सकते हो लेकिन न मिलने पर नाराज न होना ।

मेरे प्रिय, भगवान कहते है कि कुछ तुम्हारा धर्म और कर्त्तव्य मेरे प्रति है और मेरा धर्म और कर्त्तव्य तुम्हारे प्रति है । यदि किसी कारण विवशता से तुम अपने उस धर्म को पूरा नही कर सकोगे तो मै आश्वासन देता हूं, सत्य कहता हूं कि मै अपने उस कर्त्तव्य को जो तुम्हारे प्रति है पूरा करता ही रहूँगा ।

तुम्हारा हितषी
तुम्हारी ही अपनी आत्मा
ईश्वर प्रेम

व्याख्यान माला

गुरु महिमा

चाहे विश्व का कोना-कोना छाना है, पहाड़ों की एक-एक खोह देखी है, समुद्र की तह तक गए हैं, जगलों मे भटके हैं, दर-दर फिरे है, रेगिस्तानों की धूल फाकी है......जीवन में जब तक गुरु का आगमन नही होगा तब तक यथार्थ का ज्ञान नही होगा।

हृदय-कमल अन्धेरे में अनादि काल से बन्द-सकुचित पडा हुआ है---जब तक गुरु रूपी सूर्य्य का उदय नहीं होगा तब तक यह कमल खुलेगा नहीं।

हृदय के कपाट जब गुरु खोल देता है तो फिर सर्वत्र ज्ञान ही ज्ञान प्राप्त होने लगता है। जिस प्रकार चद्रमा के शीतल प्रकाश की किरण मात्र कुमुद को खिला देती है उसी प्रकार एक दृष्टि मात्र से शिष्य के जीवन की कली गुरु खिला सकता है---उसे सब कुछ दे सकता है।

अन्तर्चक्षु के खुलते ही सम्पूर्ण प्रकृति की भाषा समझ में आने लगती है---वृक्ष बोलने लगते हैं, बहती नदियाँ ज्ञान उँडेलने लगती हैं, पत्थर उपदेश करने लगते हैं।

शब्द राशि का भाण्डार तो भरा हुआ है। शब्द शक्ति के चक्कर में बहुत लोग पड़े हुए हैं

शब्द जालं महारण्यं चित्त भ्रमण कारणम्
(विवेक चूडामणि)।

यह तो विद्वानों का विलास है। रामायण, गीता भागवत तो सभी पढ़ते हैं, किन्तु उसका अर्थ कितने समझते है ? गुरु के मिलते ही ग्रन्थि खुल जाती है। इस ग्रन्थि के खुलते ही सारा रहस्य खुल जाता है। ग्र थ का मर्म स्पष्ट होने लगता है।

प्रत्येक जीव पूर्णत्व की ओर जा रहा है। पूर्व के कर्मो एव विचारो का फल सचित रूप मे आज सामने है तो आज के कर्मो एव विचारो का फल भविष्य में आएगा। हम अपने आप का निर्माण प्रति क्षण स्वय कर रहे है। फिर भी एक शक्तिशाली पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता है जो जीवन धारा को सही दिशा मे ले जाता है तथा आत्मा की उच्चतम अव्यक्त शक्तियो को जगा देता है, अपनी संजीवनी शक्ति से शिष्य को एक आध्यात्मिक जीवन दे देता है। पुस्तक वुद्धि को जगा सकती है आत्मा को नही। आत्मा को ही आत्मा जगा सकती है। जब आत्मा मे धर्म पिपासा प्रवल होती है, भगवान को जानने की सच्ची जिज्ञासा, तीव्र लालसा जाग्रत होती है तो ग्रहीता मे एक आकर्षण पैदा हो जाता है उसी आकर्षण से आकृष्ट हो कर वह प्रकाश दायिनी शक्ति से परिपूर्ण परमात्मा स्वय आकर खडा हो जाता है। यही गुरु है।

फिर पहचानने का प्रश्न कहाँ ? आत्मा स्वय पहचान लेती है। सूर्य को किसी अन्य प्रकाश से नही देखा जायगा। उसका दर्शन उसी के प्रकाश मे है इसी तरह गुरु को पहचानने के लिए किसी अन्य गुरु की आवश्यकता नहीं पड़ती। अन्तरात्मा अपने हित चाहने वाले को स्वय जान लेती है। सत्य स्वय अपना प्रमाण है उसे किसी प्रमाण से प्रमाणित नही करना है। उसका दर्शन उसकी वाणी, उसका स्पर्श, उसका प्यार पर्याप्त है अपने आप को जना देने के लिए।

सदाक़त हो तो दिल सीने से खिंचने लगते हैं वायज
हक़ीक़त खुद को मनवा लेती है, मानी नहीं जाती।

कोई गुरु को मानता नही। गुरु स्वय अपनी अलौकिक शक्ति से मनवा लेता है।

ईश्वर और अवतार

वह अनादि, अनन्त और अखण्ड तत्व जो नित्य शुद्ध, नित्य मुक्त, सर्व शक्तिमान्, सर्व व्यापक, सर्वान्तरयामी, सर्वसुहृद, सर्वसाक्षी, जिसे वेद 'साक्षी चेता केवलो निर्गुणस्य' कहते है, जिसमे दृष्टा, दृश्य, दर्शन, ज्ञाता,-ज्ञान ज्ञेय, कर्त्ता, कर्म, कारण सिद्ध होते है. जिसके द्वारा ससार उद्भव, स्थिति और प्रलय को प्राप्त होता है 'जन्माद् यस्य यता' वही ईश्वर है। सृष्टि का प्रत्येक कण-कण कहता है कि 'मै हूँ' 'मै हूँ,' हर कण अपने अस्तित्व को स्वीकार करता है, हर कण अनुभव करता है कि मैं भी कुछ हूँ। पृथ्वी पर हाथ मारिए तत्क्षण चोट लगेगी क्यो कि पृथ्वी ने भी हाथ को मारा । हर एक अपने मै को अनुभव करता है और हर एक को अपने मै से प्रेम है। ऐसा लगता है एक व्यापक मै है कि जहाँ 'मै' ही 'मै' है--'तू' नही है, जो कि अस्ति, भाति प्रियम रूपम् है......वही ईश्वर है। जो सत्, चित्, आनन्द घन स्वरूप है वहा ईश्वर है। सत् उसकी सन्धिनी शक्ति है, चित उसमे ज्ञान सवित है, आनन्द उनकी आह्लादिनी शक्ति है। वह निर्गुण है, गुणों के सयोग से ही सगुण कहलाता है। वह अपने को हर गुण मे प्रगट कर सकता है इस लिए सगुण है। उसका अपना कोई आकार नही है, अपने को जिस आकार मे चाहे प्रगट कर सकता है। इसलिए वह निराकार है। वह जगत् के रूप मे प्रगट होता है, जगत का अधिष्ठान, सत्ता है। सब कुछ जिस पर अधिष्ठित है वह अधिष्ठाता ही ईश्वर है। जो असभव-सभव सभव-असभव की कारणी योग माया, महामाया से युक्त है वही ईश्वर है। जो कर्त्तुम, अकर्त्तुम, अन्यथा कर्त्तुम समर्थ है वही ईश्वर है।

नाम रूपात्मक जगत मे चूहा और हाथी, शेर और बकरी के कर्म एक नही हो सकते किन्तु जिस तत्व के यह सब बने हुए हैं उस रूप में ये सब एक

ही है। ईश्वर निरपेक्ष सत्ता की उच्चतम अभिव्यक्ति है। वह सब का आदि है किन्तु स्वय अनादि है, उससे जगत का जन्म हुआ है किन्तु वह अपने आप में अजन्मा है ।

'अजायमाने वहुधाविजायते'। वह लघु है तो इतना लघु कि अणु-अणु के अन्दर समाया हुआ है और महान् है तो इतना महान् कि अनन्त कोटि ब्राह्मण्ड उसके अन्दर धूलि के कण के समान उड़ रहे है । जिसको वेद कहता है अणोरणीयान महतो महीयान वह भावना से अतीत है, कल्पना से अतीत है, ज्ञान से अतीत है वहाँ यदि हम ज्ञान को स्वीकार करते है तो अज्ञान को भी स्वीकार करना पड़ेगा क्योकि अज्ञान की अपेक्षा मे ही ज्ञान सिद्ध होगा। इसलिए न वह ज्ञान है न अज्ञान। यदि उसमे प्रकाश मानते हैं तो अन्धकार को भी स्वीकार करना पडता है। इसलिए न वह अन्धकार है न प्रकाश। वह काल से, कर्म से, स्वभाव से, इन्द्रिय से, मन से, बुद्धि से परे है । वह वाणी और तर्क का भी विषय नही है वह प्राणो का प्राण है, जीव का जीव है, समस्त सुखो का सुख है, काल का काल महाकाल है,उसका नाश कभी नही होता इसलिए अविनाशी है, उसमें कोई अभाव नही है, वह सब प्रकार से परिपूर्ण है इसलिए उसको पूर्ण काम कहते हैं।

ससार में जितना रस दिखाई पड रहा है वह सब वही है इसलिए वह सम्पूर्ण रस, जिसके ये सब अश मात्र है, ईश्वर का रूप है। वेद उसको 'रसौ वै सः 'कहते है अर्थात् वह रसरूप है। उसमे सभी ऐश्वर्य अनन्त रूप में विराजमान है इस लिए वह ईश्वर कहलाता है नित्य, सत्य, ब्रह्म, आत्मा, सच्चिदानन्द इत्यादि नाम से पुकारा जाता है।।वह परम कारुणिक, गुरुओं का गुरु है और सर्वोपरि वह ईश्वर अनिर्वचनीय प्रेमः स्वरूप है 'स ईश्वरः अनिर्वचनीय प्रेम स्वरूपः'

कभी साधक के सामने एक प्रश्न आता है कि हमारी उपासना का

सगुण साकार भगवान् और निर्गुण निराकार भगवान सच्चिदानन्द क्या एक ही है। हाँ, यह दोनो एक ही है, सगुण और निर्गुण दोनो ही है। भक्त का सगुण ईश्वर ब्रह्म से भिन्न नही है। जो एकमेवाद्वितीय ब्रह्म है, जिसको ज्ञानी नेति-नेति कहते है, भक्त के भाव से, उसकी उपासना के लिए सगुण साकार कहा जाता है।

अगुन-अखंड अनन्त अनादी, जेहि चिंतहि परमारथ वादी
नेति-नेति जेहिं वेद निरूपा, निजानन्द निरुपाधि, अनूपा
शम्भु, विरंचि, विस्नु भगवाना, उपजहि जासु अंस ते नाना
ऐसेहु प्रभु सेवक बस अहहीं, भगत हेतु लीला तनु धरहीं

यो तो हमारे पुराण दस मुख्य अवतार मानते हैं किन्तु भक्त के लिए भगवान असख्य अवतार लेता है, नित नूतन रूप मे आता है, भक्त की भावना के अनुसार उसे अनेको बार आना पडता है। जितनी बार वह पुकारता है उतनी बार आना पड़ता है। वही हमारा गुरु बन कर आता है। हम यहाँ साधारण गुरुओ की बात नही कर रहे हैं हम उन महापुरुषो की बात कर रहे है जिन के रूप में भगवान् स्वय अवतार लेते हैं। ऐसे गुरु के दर्शन मात्र से, स्पर्श मात्र से, इच्छा मात्र से आध्यात्मिकता का स्रोत फूट पडता है। इनकी कृपा से पतित भी साधु हो सकता है। श्री कृष्ण कहते है' आचार्य मा विजानीयात्' मुझ को ही आचार्य मानो। इस कोटि के आचार्य बहुत नही है किन्तु फिर भी पृथ्वी वीरो से खाली नही है। मनुष्य शरीर धारी भगवान है। उनके माध्यम के विना ईश्वर दर्शन नही कर सकते। निर्गुण, निराकार, पूर्ण ब्रह्म के विषय मे हम सोच ही नही सकते जहाँ तक हमारी कल्पना है वहाँ तक सब साकार है। कल्पनातीत की कल्पना नही की जा सकती। भगवान वह है जो कल्पनातीत है और साथ ही कल्पना के अन्तर्गत भी है और स्वय कल्पना भी है।

मनुष्य की भगवान विषयक उच्च से उच्च, महान से महान, सुन्दर से

सुन्दर कल्पना मनुष्य ही है। अपनी मानवी प्रकृति से भिन्न आप और कुछ नही समझते। पाण्डित्य पूर्ण विवेचन, बड़े-बड़े शब्द--सर्व शक्तिमान, सर्व व्यापी, निर्गुण, निराकार यह सब शब्द ध्वनि मात्र है। इन शब्दो का कोई ऐसा अर्थ आप नही लगा सकते जो आपकी मानव प्रकृति से भिन्न हो। हम आप से पूछते है यदि मेरी बात आप की समझ मे आती है तो फिर एक मूर्ख और विद्वान् मे क्या अन्तर है। मूर्ख भी नही जानता और विद्वान भी, केवल शब्द का उच्चारण करता है समझता कुछ भी नही। वास्तविकता यह है कि घोड़े का भगवान घोडा, और गधे का भगवान गधा होगा, मनुष्य का भगवान मनुष्य ही होगा। एक ही भगवान अनेक रूप मे प्रगट है। साधक ही अपनी प्रकृति के अनुसार अपने भगवान को देखेगा--कोई ईश्वर के पुत्र के रूप मे, कोई रसूल अल्लाह के रूप मे, कोई काली, दुर्गा, राम, कृष्ण, शकर के रूप मे, कोई अपने गुरु के रूप मे उसकी उपासना करता है। हाँ जीवन्मुक्त परमहस जो प्रकृति की सीमा के परे है उन्हे मनुष्य रूप मे उपासना करने की आवश्यकता नही है।

जैसे हम अपने गुरु श्री श्री भगवान भोला नाथ जी की उपासना पूजा और ध्यान साक्षात् भगवान के रूप में करते है। उन्होने मुझे कोई मत्र नही दिया, मुझसे माला नही जपवाई, नवरात्रि का अनुष्ठान भी नही करवाया, कभी यज्ञ करने की आज्ञा नही दी फिर भी मुझे एक दृष्टि मात्र से सब कुछ दे दिया। जीवन का समस्त अभाव छीन लिया और एक दिव्य भाव से भर दिया। श्री श्री भोलानाथ रूपी तरग ने जीवन के सारे गढे भर दिए। जहाँ वह बैठते है वहाँ के परमाणुओ में एक आध्यात्मिक शक्ति जागरित हो उठती है। सारे वायुमण्डल मे धर्म और भगवान का भाव अनुभव होने लगता है। यही अवतार है। आज भी ससार मे इस कोटि के लोग विराजमान है। इसमें आश्चर्य की बात नही है कि मानव जीवन की बाटिका मे ऐसे पुष्प खिलते रहते है।

मंत्र

ससार में जो अवतारी पुरुष हुए, जिनको शक्ति का अवतार माना गया, उन्होने तो संकल्प दृष्टि, वाणी, दर्शन एव स्पर्श मात्र से असरव्य जीवो को प्रकाश दे दिया, उनके अन्दर एक अद्भुत शक्ति का स्रोत जगा दिया जिससे उनका जीवन कृत-कृत्य हो गया किन्तु जो सिद्ध गुरु हुए उनको अपने शिष्य मे आध्यात्मिक शक्ति का बीजारोपण करने के लिए मत्र का सहारा लेना पडा ।

वैसे तो हम मंत्र देने का अर्थ 'मन्तव्य रूप' मन को ही दे देना मानते है। गुरु अपने शिष्य को अपना मन देता है। यह मन सिद्ध है, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य से परिपूर्ण है। इसलिए शिष्य के मन के साथ-साथ रह कर उसे नित्य पढाता है और अपने अनुकूल बना लेता है। जैसे भृ गी कीट को पकड़ लेता है और फिर उनके चारो ओर भृ ग-भृ ग करता है, तो कुछ दिन में कीट भी भृ गी हो जाता है। यह कीट भृ गी न्याय कहलाता है। नारद ने ध्रुव को एक आशीर्वाद दिया साथ ही अपना मना भी दे दिया। वही मन ध्रुव को तपस्या करवाता रहा, ध्रुव का मन विचलित भी हो जाता तो भी नारद का छिपा हुआ मन विचलित नही होता था उसी ने तप किया, फल ध्रुव को मिला। यही सतो का सतत्व रहा है। यह महापुरुष का मन जिसको मिल जाय समझिए मत्र मिल गया। यही हर समय साथ रहता है, जीवन की प्रत्येक क्रिया को देखता रहता है, आगाह करता रहता है रक्षा करता रहता है। वास्तविकता का प्रबोध कराता-रहता है। कालान्तर मे शिष्य-मन गुरु-मन मे लय हो जाता है।

फिर भी—गुरुओं ने उस भाव का बीजारोयण करने के लिए शब्द या नाम का आश्रय लिया और इससे शिष्य को साधन में पर्याप्त सुविधा मिलती है।

ब्रह्म मे जब तरग उठती है उस तरग का नाम भी है और रूप भी। यह तरंग ही जगत है। मानवी चित्त वृत्ति मे जितनी भी तरगे उठती है उनका नाम भी होगा और रूप भी होगा। हमारे अन्दर जो विचार तरग उठती है पहले वह शब्द के रूप मे उठती है फिर वह स्थूल हो जाती है। भगवान हिरण्यगर्भ––समष्टि महत्––ने पहले स्वय को नाम के तत्पश्चात् रूप के आकार मे व्यक्त किया। शास्त्र कहता है कि जो परिदृश्यमान, इन्द्रियग्राह्य जगत आकार के रूप मे सामने प्रगट है उसका आदि शब्द ब्रह्म से है।

ईश्वर पहले स्फोट के रूप मे परिणत हो जाते है फिर सूक्ष्म से स्थूल हो जाते है। इस स्फोट का एक वाचक शब्द चाहिए। स्फोट मे अभी भाव का कोई विकास नही हुआ है या यो कहिए कि यदि सब भेद भावो को हटा दे तो जो कुछ बचता है वही स्फोट है। इसी स्फोट को नाद-ब्रह्म कहते है। इस स्फोट के लिए यदि किसी वाचक शब्द का प्रयोग किया जाता है तो वह इतना छोटा हो जाता है कि स्फोट का भाव ही समाप्त हो जाता है। इसलिए हमे एक ऐसा शब्द चाहिए जो स्फोट के स्वरूप को प्रकाशित कर सके–– उसके निकटस्थ पहुँचा सके। यह सच्चा शब्द एक मात्र 'ॐ' ही है क्योकि यह तीन अक्षरो से बना है 'अ' 'उ' और 'म'। 'अ' कार सबसे कम भावापन्न है। श्री कृष्ण ने कहा कि अक्षरो मे मै 'अ' कार हूँ 'अक्षराणामकारोस्मि'। 'अ' कठ से निकलता है और 'म' होठो से होने वाला आखीरी शब्द है। उसी मे भव समाया हुआ है। अतः ॐ ही स्फोट का सबसे उपयुक्त वाच्य है यानी स्फोट और ॐ एक ही है। इस तरह सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति, सारे नाम-रूपो की उत्पत्ति की जननी यही पवित्र नाम 'ॐ' है। स्फोट मे कोई भाव नही है। आगे चल कर उसी से नाना भावो का जन्म होता है। और ॐ मे भी कोई भाव नही है इसलिए ईश्वर रूप है। वाच्य और वाचक प्रमेय रूप से सम्बद्ध है इसलिए ॐ स्वय ईश्वर है।

हर व्यक्ति उस निर्गुण निराकार भगवान को सीधे-सीधे नही पकड पाता।

वह उसको भाव के अन्दर ही पकडता है। भाव की भिन्नता के अनुसार एक ही ब्रह्म भिन्न-भिन्न भाव-गुण से युक्त दिखाई देता है। इस प्रकार ब्रह्म के हर खण्ड भाव का भी अलग-अलग वाचक शब्द चाहिए। इस तरह भिन्न-भिन्न मत्रो की उत्पत्ति हुई। और गुरु ने अपने अथवा शिष्य की भावना के अनुसार हर शिष्य को अलग-अलग मत्र दिया। उस परात्पर निर्विकल्प ब्रह्म को किसी ने शिव भाव मे, किसी ने राम भाव मे, किसी ने काली दुर्गा भाव मे और किसी ने वासुदेव भाव मे पकडा। इस तरह गुरु अलग-अगल किसी को 'ॐ नम. शिवाय,' किसी को 'ॐ रामाय नम' 'किसी को ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' आदि मत्र देता है।

ॐ तो अखण्ड ब्रह्म का वाचक है। अन्य मत्र उस परम पुरुष के खण्ड-खण्ड भावो के वाचक है। इसलिए यदि मत्र किसी विशेष भाव को प्रकाशित करने वाले भाव से ही जपा गया तो फल भिन्न होगा किन्तु यदि इसी मत्र को भगवत् भाव, अनत कोटि ब्रह्माण्ड नायक भाव से जपा गया तो अखण्ड ब्रह्म की प्राप्ति कराने वाला होगा (क्यो की खण्ड भाव तो केवल मन की पकड़ के लिए ही लिया गया है)

हर सिद्ध महापुरुष, ऋषि, मुनि की अपनी आध्यात्मिक अनुभूति जैसी रही है वैसे ही मत्रो की उत्पत्ति भी हुई।

अधिकाश लोग मत्र और दीक्षा का एक ही अर्थ समझते है किन्तु ये दोनो अलग-अलग है। मत्र तो गुरु शिष्य को साधन की सुविधा के लिए एक आधार के रूप मे पकड़ा देता है ताकि उसका अभ्यास नियमित रूप से चलता रहे। अपना मन्तव्य दे देता है, अपना विचार दे देता है जिस पर शिष्य विचार करता रहे, जिसका निरन्तर जप करता रहे। इस प्रकार निरन्तर उसी मत्र का जप करते-करते उस मत्र मे एक शक्ति उत्पन्न हो जाती है, सोई हुई आध्यात्मिक शक्ति मे एक जागृति का भाव आने लगता है।

दीक्षा का अर्थ है 'दे देना'। गुरु जब शिष्य को दीक्षा देता है तो उसी समय कुछ दे देता है और शिष्य को ऐसा अनुभव होता है जैसे उसे आज कुछ मिल गया हो। यहाँ से उसके जीवन का नव निर्माण प्रारम्भ होता है।

प्रतिमा प्रतीक

एक दिन किसी मन्दिर की प्रतिमा ने पुजारी से प्रश्न किया, 'पुजारी, तुम मेरी पूजा क्यो करते हो ? तुम्हारे घर मे और कई पत्थर हैं, सिल है, कॉडी है, दरेती है, अन्य उपयोगी पत्थर है जिनसे तुम्हारा काम निकलता है किन्तु तुम उनकी पूजा नही करते। तुम हमारी ही पूजा करते हो ?' पुजारी घबरा उठा। कहने लगा, 'मेरे प्रभु, मैंने इस प्रश्न पर कभी विचार ही नही किया आप ही इसका उत्तर भी दे तो श्रेष्ठ होगा। वैसे मेरे मन मे कभी यह भाव ही नही आया कि मै पत्थर की पूजा कर रहा हूँ। मेरा भाव अभी तक यही था कि मै भगवान की पूजा कर रहा हूँ।' मूर्त्ति ने कहा, 'तुम ठीक कहते हो। अन्य पत्थर जो तुम्हारे घर में है वे भले ही तुम्हारे अधिक काम के हो। किन्तु उनमें तुम्हारी ईश्वर बुद्धि नही है। इसलिए तुम उनका आदर तो कर सकते हो किन्तु वहाँ पूजा का भाव जागरित नहीं होगा। पूजा के लिए तो भगवान चाहिए, हमारे प्रति तुम ब्रह्म बुद्धि रख कर ब्रह्म की खोज करते हो।'..... यही मूर्ति उपासना है प्रतीकोपासना, प्रतिमा पूजन के नाम से जो विख्यात है वह यही है।

उपासक जब उपासना में बैठता है और ब्रह्म चिन्तन प्रारम्भ करता है उस समय उसके सामने स्वाभाविक कठिनाई आती है कि उसका चिन्तन किस प्रकार करे क्योकि जहाँ तक चिन्तन है वहाँ तक ब्रह्म को पकड़ नही पाता। किसी के चिन्तन में आ जायगा वह ब्रह्म कैसे होगा ? ब्रह्म तो चिन्तन से परे है। इसलिए साधक के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह किसी प्रतिमा अथवा प्रतीक मे ब्रह्म भाव आरोपित करके उसमे ब्रह्म बुद्धि रख के, उसकी उपासना करे। मन रूपी पक्षी शून्य आकाश में उठ तो सकता है किन्तु थोडी ही देर बाद उसे यह अनुभव होता है कि बैठने के लिए आधार रूप

म उसे कोई टहना चाहिए। इस प्रकार एक सुन्दर सी प्रतिमा जब हम आधार रूप मे अपने सामने रख लेते हैं तो ध्यान धारणा मे बडी सुविधा हो जाती है। भगवान के समस्त गुणो को—उसकी उदारता, क्षमा, दया, आनन्द प्रेम, प्रकाश, ज्ञान, शक्ति—को सामने रखी हुई मूर्त्ति में आरोपित करके जब हम उसका ध्यान, उसकी पूजा करते है तो हमारे ऊपर भी उन गुणों का प्रभाव पडता हैं। एक प्रकार से हमारा मन उन दिव्य भावो मे स्नान करने लगता है। जिन भावो को हम कल्पना और चिन्तन मे नही पकड पाते उनका हम साक्षात करते है। हाँ इसका ध्यान रखना हे कि ब्रह्म को प्रतीक के स्तर पर उतार के नही लाना है वरन प्रतीक को ब्रह्म के स्तर पर ले जाना है। पहली दशा मे साधना का वह फल नही होगा जो हमे चाहिए दूसरी दशा मे साधना फलवती होगी। वास्तविकता तो यह है कि हमको मूर्त्ति और उसमे आरो-पित गुणो का सहारा लेकर भगवन् भाव का उद्दीपन करना है। मूर्त्ति आधार अवश्य है किन्तु लक्ष्य हमारा ब्रह्म है, हम ब्रह्म की पूजा कर रहे है, हम भगवान् से प्रार्थना कर रहे है किसी पत्थर की मूर्त्ति से नही।

जिस समय सीता जी श्री राम के दर्शन के बाद गौरी पूजन के लिए गिरिजा जी के मन्दिर मे गई और अपनी मनोकामना की पूर्त्ति के हेतु वन्दना प्रारम्भ किया तो मूर्त्ति बहुत देर तक मौन रही कुछ बोली नही। जब माता पार्वती बारम्बार जानकी जी की प्रार्थना पर भी चुप रही तब जानकी जी समझ गई कि आज शायद पार्वतीजी यह चाहती हैं कि हम अपने मनोरथ को प्रगट करे। उनको सकोच हुआ परन्तु बडी चतुराई से उन्होने अपने भाव को व्यक्त किया। कहा, 'हे माँ, मै किसी पत्थर के मूर्त्ति की वन्दना थोडे ही कर रही हूँ, मै तो उसी माँ की वन्दना कर रही हूँ जो सब के मनोरथो को जानने वाली है, सब के हृदय मे बसने वाली है। उससे क्या कहे जो कहने के पहले ही जानता है।' जब इस भाव से वन्दना की—

मोर मनोरथु जानहु नीके, बसहु सदा उर पुर सबही के।
कीन्हेउँ प्रगट न कारन तेही, अस कहि चरन गहे वैदेही।

तो मूर्ति प्रसन्न हो उठी—

विनय प्रेम बस भई भवानी, खसी माल मूरति मुसुकानी ।

फिर आशिर्वाद दिया—

सुनु सिय सत्य असीस हमारी, पूजिहि मन कामना तुम्हारी ।

प्रतीक एव प्रतिमा के सहारे हमें सर्वव्यापी ब्रह्म को प्राप्त करना है। इसी प्रकार किसी भी देवी, देवता, महापुरुष की अनन्त कोटि-ब्रह्माण्ड-नायक भाव मे यदि उपासना करते है तो हमे अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक ही मिलेगा ।

यो भी जब अद्वैतवादी यह कहता है कि सब ब्रह्म ही ब्रह्म है तो फिर हमारा ब्रह्म कही से प्रकट हो सकता है । अपने व्यापकत्व को ही प्रकट करने के लिए तो खम्भ फाड कर नृसिह रूप में प्रकट हुआ । विशिष्टाद्वैतवादी इतना तो मानते ही है कि सबकी अन्तरात्मा मे श्री भगवान ही है । इस प्रकार हर खन्ड की आत्मा अखन्ड हुई । फिर खन्ड से अखन्ड प्राप्त कर लेना क्या कठिन है ?

अगर हम यह कुछ न माने । मूर्ति को केवल पत्थर ही मान लें तो भी जब उस पत्थर की मूर्ति के सामने बैठ कर पूजा करते है, प्रार्थना करते है, तो वन्दना तो हम परम चैतन्य, शुद्ध ब्रह्म की ही करते है, उपासना का फल वह ब्रह्म ही देता है क्यो कि वही सब का नियन्ता है । और इसी आधार पर हमारे देश मे गोबर गणेश की पूजा है, बालू के महादेव की पूजा है, जल, पृथ्वी, अग्नि की पूजा है, वृक्ष की पूजा है, गाय की पूजा है, हाथी की पूजा है, सब की पूजा है ।

जिन सम्प्रदायो ने किसी मूर्ति, गुरु आदि भाव की उपासना को बिलकुल हटा दिया है वे आध्यात्मिकता से दूर होते जा रहे है । इस लिए बड़े-बड़े धर्म, यहाँ तक कि वेदान्ती भी किसी न किसी रूप मे मूर्ति उपासना को स्वीकार करते है ।

इष्ट-निष्ठा

आध्यात्म पथ पर चलने वाले विद्यार्थी के लिए एक विन्दु की बड़ी आवश्यकता है जो उसको अपने पथ पर अग्रसर होने मे निरन्तर प्रेरणा देता रहे। यह प्रेरक विन्दु (Point of Inspiration) ही हमारा इष्ट बन कर हमे बराबर शक्ति देता रहता है, उठाता रहता है। हमारी प्रकृति के अनुसार यह विन्दु कोई भी हो सकता है—एक शब्द हो सकता है, एक भाव हो सकता है, गुरु हो सकता है, देवी देवता हो सकता है जैसे राम, कृष्ण, शकर, दुर्गा आदि, कोई ग्रन्थ हो सकता है। सिक्ख ग्रन्थ साहेब को ही अपना सब कुछ मानते है। क्राइस्ट हो सकता है, मोहम्मद हो सकता है, कोई भी आस्था का विन्दु इष्ट हो सकता है। हाँ शर्त यह है कि इस इष्ट में पूरी निष्ठा होनी चाहिए तभी फलवती सिद्ध होगी।

एक बार तुलसीदास जी विहारी जो के मन्दिर में पहुँचे। वहाँ के पुजारी ने भगवान् कृष्ण का शृंगार करके पट खोल दिया। संत तुलसीदास जी भगवान् कृष्ण की छवि देखकर अति प्रसन्न हुए। कहने लगे—

कहा कहौं छबि आज की भले बने हौ नाथ।

किन्तु—

तुलसी मस्तक जब नवै, धनुष वाण लो हाथ।

इसी प्रकार श्री हनुमान जी ने भी कहा—

श्री नाथे जानकीनाथे अभेदः परमात्मनि
तथापि मम सर्वस्व रामः कमल लोचनः

यद्यपि लक्ष्मीपति और सीतापति एक ही है फिर भी मेरे सर्वस्व तो कमलनयन श्री राम ही है।

कभी-कभी यह प्रश्न उपस्थित होता है कि कुछ लोग तो ऐसा कहते है

कि सब भगवान ही भगवान है अथवा सब मे भगवान है और कुछ भगवान को एक ही नाम रूप मे देखते है उन्ही की उपासना करते है। मीरा ने स्पष्ट कहा है कि 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई। जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई'। सूर ने खुलकर कहा है 'सूरदास के राधेश्याम'। तुलसी का भाव हम ऊपर प्रगट कर ही चुके है जहाँ उन्होने स्पष्ट कहा है कि सीता-राम ही मेरे इष्ट है।

इन दोनो भावो मे कौन सा ठीक है कौन गलत ? जब कोई सिद्ध पुरुष किसी जिज्ञासु के हृदय मे आध्यात्मिकता का बीज बोता है और जब वह देखता है कि यह बीज अंकुरित भी हो रहा है तो इस छोटे से वृक्ष की रक्षा के लिए अपने शिष्य को एक इष्ट के भाव मे बाँध देता है। इस समय जितनी ही तीव्र निष्ठा अपने इष्ट में होगी उतना ही सुरक्षित और मजबूती से शिष्य आगे बढेगा। यदि प्रारम्भ ही में धार्मिक उदारता दिखलाई गई और इस कोमल अकुर को खुला छोड़ दिया गया तो निश्चय जानिए कि कुछ हाथ नही लगेगा। जब तक वृक्ष मजबूत नहीं हो जाता तब तक इसको चारो तरफ प्रतिबन्ध रूपी काँटे की झाड़ियो से घेर देना आवश्यक है। जव जड मजबूत होकर गहरी हो जाय और वृक्ष विभिन्न ऋतुओ के उतार चढाव को सहन करने का अभ्यासी हो जाय तब यह प्रतिबन्ध की दीवारे तोड़ी जा सकती है। आप पूछ सकते है कि क्या उस समम इष्ट की आवश्यकता नही रह जाती ? एक इष्ट निष्ठा तो सदैव रहेगी अन्तर यह हो जाता है कि साधना की ऊँचाइयो पर जाकर इष्ट व्यापक हो जाता है। पहले साधक अपने सीता राम को एक ही नाम रूप में बाँधे रहता है। साधन करते-करते फिर अपने प्रभु को सर्वत्र देखता है—

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।

अथवा

जड़ चेतन जग जीव जत
सकल राममय जानि।
वन्दौ सबके पद कमल
सदा जोरि जुग पानि।

अब तो सर्वत्र राम ही राम है अब लक्ष्य भ्रष्ट होने का अथवा साधना मे गिरने का भय समाप्त हो चुका, अपना प्रभु स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्म से कारण और कारण से कारणातीत हो गया। अतीत ज्ञान की उपलब्धि के बाद फिर इष्ट का स्वरूप बहुत बड़ा हो जाता है उसमे फिर मार्ग भ्रम का भय नही रह जाता।

यदि आप ऊपर लिखी बात भलीभाँति समझ गए हैं तो आप देखेंगे कि हर धर्म, हर सम्प्रदाय, हर मत, हर पथ अपने इष्ट की महिमा ही तो गा रहा है। उसी एक प्रभु को ही भिन्न भिन्न नाम और रूप मे पुकार रहा है। हर एक को अपने अपने इष्ट मे पूर्ण निष्ठा रखनी है, साथ ही दूसरों के इष्ट की निन्दा नही करनी है। अपने इष्ट को ऊँचा मानने का अर्थ यह नही है कि हम दूसरे के इष्ट से घृणा करें। कुछ लोग दूसरो को बुरा कह कर ही अपने को भक्त समझते है। हर महापुरुष का लक्ष्य विश्व कल्याण ही रहा है। उन्होने बड़ी कठिनाइयाँ सही, बड़े बलिदान किए, बड़ी पीडाए सही, जन हिताय अपना जीवन दिया। देश, काल, परिस्थिति के अनुसार उनकी कार्यशैली भिन्न भिन्न रही हो, उन्हे कुछ भी करना पड़ा हो जो हो सकता है, आज आलोचना का विषय हो, हमारी समझ मे न आता हो, किन्तु उनका त्याग और तप सदैव सराहनीय है। वे स्मरणीय है, पूज्य है, प्रणम्य है। भक्त को किसी महापुरुष की निन्दा न करनी है और न सुननी है। इस प्रश्न को तुलसी ने बड़े सुन्दर रूप से हल किया है। उन्होने सभी की वन्दना की, पूजा की और जब देवता ने प्रसन्न होकर कहा कि तुम जो चाहो माँग सकते हो तो तुलसीदास जी ने हर एक से यही माँगा कि हे देव ऐसा

आशीर्वाद दे कि श्री राम जी के चरणो मे मेरो प्रीति निरतर बढ़ती ही रहे। इस प्रकार उन्होने हर देव का आदर किया, साथ ही अपनी इष्ट निष्ठा को नही गिरने दिया। यही से तो हमारा सनातन धर्म महान हो जाता है क्योकि वह भगवान के पास पहुँचने के अनेक मार्ग खोल देता है और सभी मार्गो को ऊँचा मानता है। अनेक आदर्श, अनेक देवी देवता, सभी के द्वारा भगवान को प्राप्त करा देता है। हर पुष्प भगवान की पूजा के लिए ही है। इसलिए पुजारी को बडी सुविधा है। फिर भी जब तक निरपेक्ष ब्रह्म की पक्की अनुभूति न हो जाय साधक को इस प्रकार एकात मे रहना है जैसे सीपी स्वाती का बूद पाते ही समुद्र की गहराइयो में चली जाती है और वही पडे-पड़े बूद मोती में परिवर्तित हो जाती है। साधक को उस समय तक एकात रहना है जव तक गुरु का दिया हुआ बूद आध्यात्मिक मोती मे परिवर्तित नही हो जाता।

एक बार गुरुदेव से पूछा मुझे जल की आवश्यकता है गुरुदेव ने कहा कि कही खोद लो इस पृथ्वी के हर खण्ड मे जल विराजमान है। दो सौ हाथ खोदने से जल निकल आएगा, जिज्ञासु ने कही पर बैठ कर खोदना शुरू कर दिया, कुछ समय में जब पानी न निकला तो घबरा कर अन्य स्थ न पर खोदने लगा। इस प्रकार उसने कई स्थान पर परिश्रम किया किन्तु जल की प्राप्ति नही हुई। घबराकर वह पुनः गुरुदेव के पास आया और शिकायत की कि महराज आपने तो दो सौ ही हाथ खोदने को कहा था मैं तो कुल मिला कर चार सौ हाथ खोद चुका हूँ किन्तु जल की प्राप्ति मुझे अभी तक नही हुई। महराज जी ने पूछा कि भाई तुमने कैसे खोदा। उत्तर दिया सरकार आपने कहा था कि जल सर्वत्र है इस भाव से मैने एक स्थान पर खोदा और जब वहाँ जल नही मिला तो दूसरे स्थ ान पर खोदा इस आशा में कि यहाँ पर पानी निकल आवे। इस तरह मैंने अनेक स्थानो पर परिश्रम किया किन्तु जल की प्राप्ति नही हुई। मुझे तो ऐसा भ्रम हो रहा है कि जल कही नही है जिस जल की चर्चा आप करते है वह कपोल कल्पित है। श्री महराज जी ने हँसकर कहा 'वत्स, तुमने सही रूप में परिश्रम नही किया। यदि एक स्थान पर बैठ कर तुमने खोदा होता तो जल अवश्य प्रकट हो जाता।'

पूजा, ध्यान-धारणा

आत्म विकास में चित्त की एकाग्रता की बहुत आवश्यकता है।

ध्यान

१—**स्थान**—अभ्यास करने के लिए एक सुन्दर स्थान की आवश्यकता है जो शान्त हो और जन कोलाहल से दूर हो क्योकि चचल वातावरण में चित्त बार-बार विक्षिप्त होता रहता है।

२—**स्थान की सजावट**—अभ्यास के स्थान पर बहुत अधिक सामग्री नही होनी चाहिये। दीवारों पर बड़े महापुरुषों के अत्यन्त भावपूर्ण चित्र जिनमें मस्ती एवं आनन्द भरा हो लगाना चाहिए। संख्या बहुत अधिक न हो।

अभ्यास के स्थान से लगभग दो गज की दूरी पर नेत्र की सीधान से कुछ ऊपर (४५° अंश के कोण पर) एक अत्यन्त सुन्दर मूर्ति रखनी चाहिए। यही उपासना की मूर्ति होगी इसलिए इष्ट की ही प्रतिमा रखनी चाहिये। ईष्टेते इति ईश्वरः इष्ट ईश्वर ही होता है अतः यह भावना जिसकी जिसमें हो उसी की प्रतिमा रखनी चाहिए। सिहासन पर वही मूर्ति होनी चाहिए जिसके देखने से यह भावना मन में उत्पन्न हो कि इससे सुन्दर और कोई नही, इससे महान् और कोई नही, इससे शक्तिशाली, ज्ञानवान, प्रकाशवान और कोई नही, इससे प्रिय और कोई नही। मूर्त्ति बरबस हृदय को पकड़ ले ऐसी होनी चाहिए। जो लोग गुरु को ही सब कुछ मानते है वह अपने गुरु का ही चित्र रख सकते हैं। यो तो हम किसी सफेद कागज पर एक काला विन्दु बनाकर ही सामने रख सकते हैं और उसी पर ध्यान का अभ्यास कर सकते हैं किन्तु उसमें अधिक विवरण न होने से उतनी सुविधा नही होती जितनी कि मूर्त्ति में होती है।

मूर्त्ति के पास शंख, घटी, दीपक, चन्दन, जलपात्र आदि रखना चाहिये। स्थान को अगरबत्ती के धुये से शुद्ध कर देना चाहिए, पूजा गृह अच्छी तरह प्रकाशित कर देना चाहिये। बैठने का आसन सुन्दर, पवित्र एव सुखद होना

चाहिए। यों तो अभ्यास के स्थान पर पूर्ण शान्ति होनी चाहिए किन्तु यदि संगीत की मधुर, मीठी-मीठी ध्वनि कानो में पड रही हो तो कभी-कभी ध्यान करने में सहयोगी सिद्ध होती है। कीर्तन आदि का भाव यही है कि मन को पकड ले और भाव की गहराइयों में डुबो दे। यह साधक की अपनी प्रकृति पर निर्भर करता है। पुष्पो के बड़े सुन्दर हार और कुछ खिले हुए पुष्प भी साथ में चाहिए। वस्तुत. इतनी तय्यारी केवल भाव की जागृति के लिए ही हैं। सजावट का यह ढग बड़ा ही वैज्ञानिक भी है। मन इन्द्रियो मे होकर वहिरंग भागता है, हमने उसको पकड़ने के लिए सारे साधन इकट्ठे कर लिए—नेत्रो को चित्र एवं ध्यान की मूर्त्ति, कानो को मधुर सगीत, घ्राण को भीनी-भीनी पुष्प और अगरबत्ती की सुगधि देकर चचलता का नाश करने का प्रयत्न किया। इनमे एक प्रकार की मादकता है जो मन के लय होने में सहायक होती है। शंख, दीपक, पुष्पमाला आदि स्थान के वातावरण को बदलते है और उपयुक्त भाव जाग्रत करते है। भाव की पुष्टि के लिए उपासना की मूर्त्ति को भगवन् की संज्ञा देते हैं ताकि मन पूर्ण रूप से भगवत्भाव से ओत प्रोत हो जाय। इस ढग से मन पर एक अत्यन्त मनोवैज्ञानिक प्रभाव (Psychological effect) पड़ता है जो कि मन को लय करने में बडा सहयोग देता है।

३—**समय**—प्रातःकाल अथवा सायंकाल का समय उपयुक्त है अथवा जो भी समय आपकी सुविधा का हो वही सबसे उत्तम है।

४—**प्रक्रिया**—शौच आदि से निवृत्त होकर स्नान करें। स्नान करते समय यह भाव मन में लावें कि मैं पवित्र हो रहा हूँ। नहाने के समय ही ध्यान का भाव (mood) जगाना प्रारम्भ कर दीजिए। यदि शरीर अस्वस्थ है और शीत आदि का प्रकोप है तो स्नान न करके केवल वस्त्र बदल दे और अपने ऊपर गंगाजल छिड़क ले। मन में दृढ भाव रक्खें कि मै पवित्र हो गया। इन समस्त क्रियाओ का लक्ष्य मन में इस भाव को उत्पन्न करना है कि मैं पवित्र हो रहा हूँ। गगा स्नान आदि का भी यही भाव है। जल शरीर को शुद्ध करता है, मन को नही। इसलिए जल में पवित्रता का भाव आरोपित

करके ही मन पवित्र होता है। इसलिए जैसे-जैसे प्रगति होती जायगी इन क्रियाओ की अधिक आवश्यकता नही पड़ेगी। फिर तो खयाल से ही मन पवित्र हो जायगा, केवल श्लोक आदि पढते ही भाव जाग्रत हो जायगा।

शरीर और मन को शुद्ध करके अब स्थान की ओर चलिए। चलते हुए मन मे इस भाव को दृढ करते रहे—'मै पवित्र हूँ, मुझमे अपवित्रता कहाँ ?' पूजा के स्थान मे प्रवेश करते समय ध्यान रक्खें कि वहाँ भगवान् विराजमान है। सिहासन मे पूरा भाव रक्खे कि वहाँ भगवान् बैठे हुए है। इसलिए उनके सामने बहुत शिष्ट और विनम्र होकर जाना है। प्रवेश करते ही प्रणाम करे ताकि यह भाव पुष्ट हो कि वहाँ सचमुच भगवान उपस्थित है।

स्थान पर लगे हुए चित्रो को, उनकी प्रतिमा, उनकी मस्ती, मुख पर विराजमान् शान्ति और प्रसन्नता को अपने नेत्रो में खूब भर लें कि अब अन्दर अन्दर उस मस्ती का अनुभव करने लगे। सभी चित्रो को हाथ जोड़ कर हृदय से प्रणाम करे। इस प्रकार तय्यार होकर फिर आसन पर बैठें। पुनः भगवान् को प्रणाम करे, प्रणाम करके थोडी देर उनकी छबि निहारे, फिर आचमन करें, शुद्ध जल को श्लोक आदि पढकर मुख मे डालने का अर्थ केवल इतना है कि मन यह बिलकुल स्वीकार कर ले कि मै पवित्र हूँ। फिर पूजन प्रारम्भ करे, श्लोको को पढते हुए, प्रभु नाम उच्चारण करते हुए मूर्त्ति को स्नान करावे, तिलक, नैवेद्य, पुष्पहार, चन्दन आदि से अच्छी प्रकार सजावे, दीपक प्रज्वलित करके रख दें, अगरबत्ती जलावे और उसके धुए को सारे कमरे मे फैलने दें। सारी हवा सुगन्ध युक्त हो जानी चाहिए। जब तक पूजन की क्रिया चलती रहे तब तक श्लोक पढ़ें, नामोउच्चारण करें, पदो को गुनगुनाएँ और खूब सुख लें। किन्तु जब ध्यान प्रारम्भ करे तो फिर कुछ नही करना है।

भगवान् की मूर्ति के पास ज्योति जला कर ध्यान प्रारम्भ करें।

५—ध्यान प्रारम्भ—अपने आसन पर सुखासन से बैठें। सुखासन का अर्थ यह है कि जिस आसन से आप सुखपूर्वक बैठ सकें, उसी से बैठें ताकि मन शरीर की ओर बारम्बार न भागे और ध्यान करने के समय शरीर को

भूलने में सहयोगी सिद्ध हो जावे––शरीर भाव से ऊपर जाना है, सुखासन से आसन पर बैठकर कुछ समय बिलकुल शून्य हो जावें––कोई जप नही, विचार नही, कुछ नही––एक दम शान्त—……। इसको मानसिक शून्यता (mental vacuity) कहते है। इस प्रकार एक नशे का अनुभव होगा। सुगन्धि से भी यह नशा बढता है इसलिए पूजन में इत्र, चन्दन, पुष्प, अगरु-बत्ती आदि का प्रयोग अवश्य करे। अनुभव करे कि सारे वायु मडल में नशा भरा है, उस नशे मे मैं विभोर हो रहा हूँ और पूर्णभाव, पूर्ण शक्ति, पूर्ण ध्यान अपने नेत्रो मे केन्द्रीभूत करे। पलकें नशे में इतनी भारी होने लगेगी कि खोलने की इच्छा नही होगी। हर इन्द्रिय की शक्ति नेत्रो में ही भर ले। कुछ ही समय में आपको मालूम होगा कि सारा शरीर विद्युत प्रवाह से सचा-रित (charged) हो रहा है, फिर भी सबसे अधिक तेजी नेत्रों ही पर है।

नेत्रो को खूब नशे में भर कर फिर इष्ट का ध्यान करें। जिस समय मूर्त्ति का ध्यान प्रारम्भ करे उस समय मन में ध्यान रक्खे कि जो मूर्त्ति सामने विराजमान है वह साक्षात भगवान हैं, उसमे अनन्त ज्ञान है, प्रकाश है, प्रेम है, मस्ती है, अखड शान्ति है, असीम शक्ति हैं और आनन्द का भडार है। प्रतिमा में इन भावों को आरोपित करके ध्यान करने से यह गुण अपने मे भी जाग्रत होने लगते हैं। जब नशे और मस्ती के सामने बैठेगे तो मस्ती आएगी। प्रकाश के सामने बैठने से प्रकाश आएगा, ज्ञान के सामने बैठने से ज्ञान जाग्रत होगा, आनन्द के सामने बैठने से आनन्द का अनुभव होगा, सामने जैसा भाव होता है मन पर वैसा ही प्रभाव पड़ता है। इन भावों से ओत-प्रोत होकर प्रभु की छबि का दर्शन करें––एक एक अग का दर्शन करे––केश से लेकर चरणों के नख तक अग-अग को निहारे––मस्तक, नेत्र, भौहे, गाल, चिबुक, ग्रीवा, वक्षस्थल, नाभि से नीचे उतरते हुए चरण तक, फिर चरण से मस्तक तक बारम्बार निहारने का अभ्यास करे।

इतना ध्यान रहे कि नेत्रों पर तनाव (Strain) न पड़े। थकान न आवे, खूब मस्ती, आराम से ध्यान करें, थकान जरा भी मालूम हो तो नेत्र

बन्द कर लें । हाँ इतना करें कि जैसे आनन्दमयी मूर्त्ति का ध्यान आँख खोल कर रहे थे उसी का ध्यान नेत्र बन्द करने पर भी चलता रहे, इस प्रकार ध्यान का क्रम नहीं टूटेगा । ध्यान दो तरह से होता है, एक दिमाग से, एक दिल से । आप हृदय से ध्यान करें, भाव से ध्यान करें, ऊपर ऊपर न तैरें, डूबने की चेष्टा करे । अग प्रत्यग को कड़ा न रक्खे, शिथिल होकर आराम से बैठें, फिर मन भी शिथिल करें । यह क्रिया शिथिलीकरण (Relaxation) कहलाती है । ध्यान पूरी शिथिल अवस्था (State of full relaxation) मे ही पूरा सुख दे सकेगा । पूर्ण शिथिल अवस्था का अर्थ हुआ शरीर और मन दोनों का पूर्ण शिथिली करण (Perfect relaxation of body and mind) इस अभ्यास को इतने समय तक करे जितना आसानी से हो सके । अधिक तनाव (tension) को बचाना है । कुछ समय लगातार सुख पूर्वक इस क्रम को चलावे ।

जीव स्वय सुख का स्वरूप है किन्तु अशुद्धियों के कारण अपने आप मे ही जो सुख एव शान्ति छिपी है उसका अनुभव नही कर पाता । अपने आप को पवित्र कर लेना ही साधक का लक्ष्य है । पवित्र होने का अर्थ है अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित होना, सब कुछ भूलकर अपने आप में रम जाना ।

ध्यान की प्रणाली मे जितने भी अग है सभी जगत को भुलाकर अपने मे डूब जाने मे सहयोगी है । वाह्य वृत्तियो को अन्तर्मुखी करने, आत्म विभोर हो जाने मे, हमने प्राकृतिक साधनो को अपनाया है । रूप के निहारने में एक आनन्द का नशा है । आनन्द के नशे मे चले जाने की चेष्टा करनी है रूप को छोड देना है । रस में, स्पर्श मे, गन्ध में, शब्द में जो आनन्द का भास है उसमे लय हो जाना ही, वस्तु को भूलने की चेष्टा करनी है । मूर्त्ति के ध्यान मे हमे उसी आनन्द के नशे को पकडना है । मूर्त्ति जिस भाव मे विभोर है उसी भाव में विलीन होना है । जहाँ नशे में कमी आने लगे फिर मूर्त्ति को देखकर सुगन्धि, स्वर, भाव आदि का आश्रय लेकर फिर नशे मे डूबने की चेष्टा करनी है ।

जिस प्रकार मिठाई खाते है तो मिठास का अनुभव होता है, मिठास को देख नही सकते, उसका केवल अनुभव कर सकते है किन्तु मिठाई मिठास का स्वाद तो करा ही देती है। मिठास और मिठाई को अलग करना कठिन है, सूर्य से सूर्य का प्रकाश अलग करना कठिन है, अग्नि से दाह अलग नही हो सकता, बर्फ से ठडक को अलग नही कर सकते। बर्फ से ठडक का, अग्नि से दाह का, सूर्य से प्रकाश का, मिठाई से मिठास का, ध्यान आता है। बर्फ साकार है ठडक निराकार है, सूर्य साकार है, प्रकाश निराकार है, अग्नि साकार है, दाह निराकार है, मिठाई साकार है मिठास निराकार है। साकार का ध्यान निराकार का अनुभव करने के लिए ही रक्खा गया है। साकार मे निराकार छिपा हुआ है इसी को पकडना है। भावना मे भावनातीत छिपा है उसी मे डूबना है। गुण में गुणातीत छिपा है। गुणातीत में खो जाना है। ध्यान का अभ्यास जितना अधिक होगा, नशा उतना ही अच्छा होगा। जिस प्रकार वस्तु को देखने से वस्तु से सम्बन्धित भाव जाग्रत होता है उसी प्रकार उसका नाम लेने से भी वह भाव जाग्रत होता है। भोजन का नाम लेने से ही मुँह में पानी आने लगता है। भूत के नाम से ही भय लगता है। शत्रु के नाम से क्रोध जाग्रत होता है वैसे ही गुरु के, भगवान के अथवा किसी नाम रूप के, जिसका सम्बन्ध उस आनन्द से है, नाम लेने से सबधित भाव जाग्रत होता है। इतना ही सहयोग नाम जप का है—नाम लेने से नामी का ध्यान और नामी से फिर वही आनन्द का नशा जो हमारा लक्ष्य है प्राप्त करना है।

कभी एक प्रश्न उपस्थित होता है कि ध्यान करने के समय कई मूर्त्तियाँ आती है जिसके कारण ध्यान विक्षिप्त होता है। इसके लिए थोड़े अभ्यास की आवश्यकता है। जिस मूर्त्ति के ध्यान से आनन्द की पकड होती है उसका बारम्बार ध्यान करना चाहिए। स्थूल फिर सूक्ष्म चिन्तन जैसे-जैसे प्रगाढ होता जायगा तैसे-तैसे अन्य मूर्त्तियाँ विलीन होती जायँगी। एक मूर्त्ति ही ऐसी बस जायगी कि फिर हटाए नही हटेगी। अभ्यास द्वारा आप अपने अन्दर इतनी क्षमता उत्पन्न कर लेंगे कि जिस मूर्त्ति का आप ध्यान करना चाहेंगे वही दिखाई पड़ेगी।

आहार व्रत स्नान संयम

आहार

'जैसा अन्न वैसा मन' यह कहावत प्राचीन है। भोजन का प्रभाव केवल हमारे शरीर ही तक सीमित नही है। इसका प्रभाव मन पर भी पडता है। शुद्ध आहार से अपने शरीर एवं मन को स्वस्थ रखना है। सामान्य रूप में हमारे भोजन में निम्नलिखित पदार्थ होते है।

१—कार्वोहाइड्रेट्स या स्टार्च—गेहूँ, चावल, आलू, शकरकन्द इत्यादि

२—प्रोटीन—दाल, गेहूँ, दूध, सोयाबीन, काजू, पिस्ता, बादाम, मांस, अंडा, आदि

३—फैट्स—चरबी, क्रीम, मक्खन, तेल घी इत्यादि

४—मिनरल्स—नमक आदि

५—विटामिन—हरी सब्जी, ताजी तरकारी, ताजे फल

६—पानी

ये छ चीजें जब उचित मात्रा में हम लेते रहते है तो हमारा स्वास्थ्य ठीक रहता है क्योंकि शरीर की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहती है। इनमें से एक भी यदि हटा दिया जाय तो उस पदार्थ की कमी से शरीर में कोई कमी आ जायगी जिसको आप रोग कह सकते हैं। इसे संतुलित भोजन (Balanced diet) कहते हैं।

आप लोगों का खयाल है कि खूब पौष्टिक भोजन होगा तभी हम स्वस्थ होंगे। ऐसा खयाल गलत है। ऐसे बड़े बड़े पहलवान भी जो केवल बादाम ही छानते हैं बीमार होते है। बहुत दूध पी लीजिए और घी खा लीजिए तो रोग पैदा हो सकता है, स्वस्थ के बजाय अस्वस्थ हो सकते हैं। बहुत पौष्टिक पदार्थों के पीछे पागल न हूजिए, ध्यान रखिए कि भोजन आपका

संतुलित हो यानी आपकी थाली मे उचित मात्रा में सारी चीजे होनी चाहिए। हरी सब्जी और फलो का सेवन अधिक मात्रा में कर सकते है। यदि आप केवल दो वार १२ घण्टे के अन्तर से भोजन करें तो शरीर में स्वास्थ्य और बल की कमी नही रहेगी। मदि सुविधा पूर्वक उपलब्ध हो तो भोजन के ६ घण्टे के बाद हल्का सा फल आदि या किसी भी हल्के भोजन का नाश्ता कर सकते है। किन्तु यदि किसी कारण वश यह प्राप्त: होना कठिन या असुविधा-जनक हो तो दो बार भोजन पर्याप्त है।

भोज्य पदार्थ नाना प्रकृति वाले होते हैं। आपको अपने भोजन के बारे में स्वय निर्णय करना है कि हमारी प्रकृति कैसी है और हमारे लिए किस प्रकारक भोजन उपयुक्त होगा। इसका अध्ययन आवश्यक है क्योंकि आपको मालूम है कि वही भोजन विष हो सकता है और वही अमृत। सखिया जैसा प्राणघातक विष भी किसी दशा मे अमृत का कार्य करता है और दूध जैसा अमृत भी विष के तुल्य कुप्रभाव वाला सिद्ध हो सकता है। जिस भोजन को ग्रहण करने से स्वास्थ्य सुन्दर और शरीर की मशीन सही रूप मे चलती रहे वह तो अमृत है और जिस भोजन के करने में शरीर अस्वस्थ हो और शारीरिक त्रियाएँ शुद्ध रूप मे न होती हो वह विष है। अधिक भौजन विष के समांन हो जाता है। याद रखिए कि अधिक खाने से कम खाना ज्यादा लाभ-दायक है।

हमारा शरीर वात, पित्त, कफ़ का सम्मिश्रण है। यदि भोजन की व्यवस्था ऐसी है कि ये तीनो सम रूप में रहते है तो रोग नही आएगा। यदि ऐसा भोजन किया जिसके फलस्वरूप इन तीनो तत्वो मे विषमता हो गई तो जो तत्व प्रधान होगा वैसा ही रोग उत्पन्न होगा। भोजन का सतुलन सुन्दर रखिए, कभी रोग नही होगा, साधन मे सुविधा होगी और आयु भी दीर्घ होगी।

यह सब तो सामान्य स्वस्थ व्यक्ति के लिए हुआ। अब रहा साधक का भोजन। इस विषय में हमे कुछ विशेष रूप से ध्यान देना है। प्रकृति के अन्दर

तीन गुण पाए जाते है—सात्त्विक, राजस, तामस। आध्यात्मिक प्रगति में सात्त्विक आहार साधक है, सहयोगी है, ऊपर उठाने वाला है। राजसिक एव तामसिक भोजन तामसी प्रकृति को जाग्रत करता है जिससे मन नीचे की ओर, यानी बिषयों और इन्द्रियो की ओर भागता है और साधक की साधना मे बाधा उपस्थित करता है। यही कारण है कि साधक का भोजन बडा सात्त्विक होना चाहिए, अधिक बादाम, पिस्ता, अडा, मांस, घी का प्रयोग विषय भोग की इच्छा को प्रवल करता है। आप चाहे तो बादाम और घी उचित मात्रा में ले सकते है किन्तु अडा, मास आदि तो स्पर्श नही करना चाहिए। प्या , लहसुन गुणकारी होते हुए भी उत्तेजक है इसलिए नित्य के भोजन में तो त्याज्य है परन्तु आवश्यकतानुसार औषधि रूप मे इनका सेवन किया जा सकता है। गाय या बकरी का दूध, दही, सब्जी ऋतुओ के फल, मूग या अरहर की दाल, गेहूँ, चावल, जौ, थोडा चना, दूध का छेना, थोडा घी (यदि मिल सके तो गाय का घी) कभी कभी थोडी मात्रा मे सोयाबीन आदि का आप प्रयोग कर सकते है। मिर्चा हानिकारक है, धातु क्षीणता आदि दोष पैदा करता है। मसालो का प्रयोग उचित मात्रा मे बडा लाभदायक है। काली मिर्च, लौग, धनिया दारचीनी, इलायची, जायफल, तेजपत्ता, हल्दी सब उचित मात्रा मे औषधि है। भारतवर्ष मे हल्दी का प्रयोग सामान्य है इसलिए यहाँ कुष्ठ रोग विदेशो की अपेक्षा कम मिलेगा। अन्य मसाले पेट के लिए तथा पाचन क्रिया मे बड़े सहयोगी है। भोजन मे बहुत कट्टरता बरतने की आवश्यकता नही है अन्यथा प्रकृति के साथ मेल करके न चलने से स्वास्थ्य चौपट हो जायगा और आप यही शिकायत करते रहेगे कि महराज इतने नियम से रहते है फिर भी शरीर गिरता जा रहा है। कड ुवा तेल सब प्रकार लाभदायक है—शरीर मे लगाइए, नाक में डालिए, कान में डालिए किन्तु खाने मे सावधानी रखिए, अधिक खाना ठीक नही। भोजन मे तुलसी का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है। आँवला और बेल आदि का प्रयोग अमृत तुल्य है। वैसे विभिन्न देश और जलवायु मे रहने वाले साधक अपनी प्रकृति और वाह्य प्रकृति में मेल करते हुए शरीर के लिए उपयोगी एवं

स्वास्थ्य वर्धक भोजन का चुनाव स्वय कर सकते हैं। ऐसा करने से भगवान नाराज नही होगा, कट्टरता गुरुओ ने नही, चेलो ने बनाई है।

अब दूसरा प्रश्न आता है कि साधक का भोजन बडा शुद्ध होना चाहिए। छान्दोग्य उपनिषद कहता है—'आहार शुद्धौ सत्व शुद्धि', सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृति.'—आहार शुद्ध होने से चित्त शुद्ध होता है और चित्त शुद्ध होने से भगवान का निरन्तर स्मरण होता है। कुछ लोग इस शुद्ध के अर्थ का इतना अनर्थ करते है कि बहुत सी शक्ति का अपव्यय होता है। कुछ अंश में सफ़ाई बहुत आवश्यक हे किन्तु सामान धोते, रसोई धोते, कपड़े धोते, लकडी कोयला धोते, छुआ छूत को बहुत अधिक रूप देते देते नाकों दम हो जाता है। इन्ही लोगों को देखकर स्वामी विवेकानन्द भी कहते है कि 'कभी तबीयत घबराती है कि इनका धर्म कभी चौके के बाहर आ सकेगा कि नहीं'। शुद्ध आहार का अर्थ केवल इतना ही नही है कि भोजन सात्त्विक हो और शुद्ध होकर सफाई से बनाया गया हो। आहार शब्द की व्याख्या करते हुए एक आचार्य कहते हैं 'आहरण इति आहार'—जो आहरण किया गया है वही आहार है। अत शुद्ध रूप मे किया है या नही यानी आहार का भाव से सबंध है। जिस जिस धन से अन्न खरीदा गया वह शुद्ध है कि नही, जिस भाव से भोजन तैयार किया गया वह शुद्ध है कि नही—इन सबका ध्यान रखना भी आवश्यक है। इसलिए उत्तम भोजन वही है जो अपने हाथ से तैयार किया जाय। दूसरे स्थान पर माँ के हाथ का, तीसरे स्थान पर स्त्री के हाथ का और अन्त में फिर कोई भी पवित्र भाव से बना दे तो ग्राह्य है। शकराचार्य इस आहार शब्द का अर्थ 'आहृत' लेते है। आहृत का अर्थ है अन्दर लेना—इन्द्रियों द्वारा जिन विषयो को हम भोगते है, जिन्हे हम बाहर से अन्दर प्राप्त करते है उस विषयानभूति रूपी ज्ञान की शुद्धि ही आहार शुद्धि है। अतः मोह, आसक्ति, द्वेष, राग से रहित शुद्ध ज्ञान का प्राप्त करना ही शुद्ध आहार करना है।

व्रत-उपवास

आहार के साथ व्रत उपवास का भी सम्बन्ध है। इसका लक्ष्य पहले तो यह है कि आमाशय को थोड़ा विश्राम मिल जाय जिससे वह शुद्ध हो और

चन क्रिया में भी वृद्धि हो। जितनी अच्छी पाचन क्रिया होगी उतना ही रीर स्वस्थ और शक्तिशाली होगा। दूसरे उपासना के लिए साधक को अव-र भी मिल जाता है। तीसरे सबेरे से शाम तक, दिन रात, बारहो मास रो मे भोजन का प्रबन्ध होता रहता है, आदमी खाने खाने मे ही लगा रहता । कभी कभी अवकाश भी चाहिए वह इसी व्रत उपवास के बहाने मिल कता है।

यहाँ पर हमारा मतलव उस व्रत उपवास से नही है कि जिस दिन और कर भोजन बनाया जाता है, विशेष रूप से तैयारी होती है, अधिक जन तैयार किए जाते है। उपवास या व्रत के यह बड़े गलत तरीके है इससे आमाशय के और अधिक खराब हो जाने का डर रहता है। अधिकाश ारे यहा व्रतों के दो प्रचलित रूप है। एक तो वह जिनमें फलाहार की यारी खूब प्रेम से होती है। नाना प्रकार के व्यजन बनाये जाते है। बड़ी न्नता का दिन होता है। बच्चे बड़े गर्व से कहते है आज हम व्रत है। डटकर भोजन होता है उसमें भी सिघाडा, अरुई, शकरकद आदि बादी जो का मनमाना सेवन होता है। यह भोजन तो रोज के भोजन से भी निकारक हुआ। व्रत का दूसरा तरीका यह है कि चौबीस घटे बिलकुल राजल निराहार रह कर अवधि समाप्त होने पर खूब जम के भोजन या। भोजन भी कैसा ? खूब भारी, गरिष्ट—पूडी, पापड़, हलवा, जलेबी के आरम्भ मे भी पेट को भारी और देर मे हजम होने वाली चीजो से लेते हैं ताकि बीच में भूख न सताए, यह दोनो प्रकार के व्रत अत्यन्त निकारक है। पेट को बिलकुल चौपट कर देते है।

व्रत का सही रूप यह है कि मास मे दो दिन चुन लीजिए जिस दिन एक य आहार कीजिए चाहे वह एकादशी हो या पूर्णमासी। इन दिनो एक य भोजन बिलकुल न करे। दूसरे भोजन हल्का और अल्प रूप मे हो जैसे , दही है, फल है। यदि कुछ नही उपलब्ध है और शरीर ऐसा है कि धक भूख सहन नही कर सकते दो थोडी सी हरी सब्जी, मूग की दाल या ु के फल का सेवन किया जा सकता है।

दूसरा रूप निराहार व्रत का है। ऐसा व्रत यदि सही रूप मे किया जाय तो बड़ा लाभदायक हो सकता है। जिस दिन व्रत करना हो उसके एक दिन पहले शुद्ध सात्त्विक आहार थोड़ी मात्रा में होना चाहिए। प्रातःकाल साधारण भोजन, दिन में कुछ नही, रात्रि में आठ दस बजे के बीच १ पाव दू या एक पाव दही या १ गिलास फल का रस—इस प्रकार तरल भोजन कीजिए। यह तो पहले दिन की तय्यारी हुई। अब व्रत वाले दिन १२ बजे तक कुछ नहीं लेना है। १२ बजे के बाद जब भी प्यास या भूख मालूम हो तो थोड़ा पानी एक दो घूट फल का रस लेते रहिए। एक गिलास पानी मे एक नीबू का रस डालकर रख लीजिए और कभी कभी एक दो घूट इसे ले लीजिए न तो यह होने पावे कि तीव्र क्षुधा व्याकुल करदे और आप अपनी जान देक पुण्य कमाएँ और न ऐसा करें कि फल के रस के ही बहाने दो चार लोटा पी गए। जब भी बहुत क्षुधा या प्यास तंग करे दो घूट ले लीजिए। रात त मे यदि चार गिलास तरल भोजन पहुँच जाय तो अधिक नही है। यदि फल का रस सुविधा पूर्वक प्राप्त न हो सकता हो तो आप बाजार से हरी तरका लाइए। लौकी, नेनुवा, मूली, पालक, एक दो गाँठ अदरक, टमाटर आ हल्की और सात्त्विक तरकारियों को एक ही बटलोई मे भर कर खूब उबा लीजिए। हाथ से मल दीजिए ताकि अच्छी तरह सभी चीजे पानी मे घु जायँ। फिर कपड़े से छान लीजिए और एक शीशे के बर्तन में भर कर र लीजिए। यह रस लगभग चार पाच गिलास हो सकता है। उसमे एक मा सेंधा नमक मिला दीजिए। फल के रस की जगह पर आप इस रस का से कर सकते है। व्रत के दूसरे दिन आप खाने पर एक दम न टूटिए नही तो ब हानि उठानी पड़ेगी। पहले समय थोड़ा फल ले सकते हैं। दूसरे समय की बहुत गली हुई खिचडी थोड़ी सी ले सकते है। इसके अगले दिन आराम से भोजन करें। इस प्रकार मास में एक दिन भी व्रत रख सकें आमाशय इतना सुन्दर कार्य करेगा कि आपको बड़ी ताजगी और शक्ति अनुभव होगा।

जो लोग शरीर से रुग्ण है, दुर्बल है, शक्तिहीन हैं, वृद्ध है उनके लिए व्रत, जिनमे क्षुधा को सहने का अभ्यास करना रहना है, उपयोगी सिद्ध होने के बजाय हानिकारक हो सकते है। उनके लिए तो अपनी प्रकृति और बाहर की सुविधाओ और सामयिक ऋतुओ के अनुसार जो भी अनुकूल हो उसी का अल्पाहार के रूप मे सेवन करना उचित है। पानी मे नींबू और सब्जी उबाल कर उसका रस, थोडा सेंधा नमक डालकर, प्रयोग करते रहना चाहिए। जिनकी पाचन क्रिया अच्छी नही है उनके लिए यह अनुभूत प्रयोग है।

इस प्रकार हर अवस्था मे शरीर को पूर्णतया स्वस्थ और निरोगी रखना आवश्यक है।

शरीर के हर अग अच्छी प्रकार क्रियाशील हो, उनमे शुद्ध रक्त का सचार होता रहे, इसके लिए आवश्यक है कि कुछ शारीरिक व्यायाम भी होता रहे। जिससे सध सके वे आसन आदि करते रहें। कुछ आसन, व्यायाम, दौडना, चलना आदि नियमित रूप से बड़ा ही लाभदायक है। और यदि आपसे कुछ भी न हो तो फिर हमारी बात आँख मूँद कर मान ले। वह यह कि आप अपने नित्य नैमित्तिक व्यवहारिक क्रियाओं में खूब परिश्रमशील रहिए। जहाँ तक हो सके अपनी सेवा किसी से न कराइए, दूसरो की सेवा खूब कीजिए। पेड़ो मे पानी दीजिये, बगले मे सफाई कीजिए, घर भर के कपड़े धो डालिए। जो काम सामने आ जाय प्रसन्नता से अपनी साधना का एक अग मानकर स्वीकार कर लीजिए। सारा घर साफ़ सुथरा हो जायगा। घर के सारे प्राणी परिश्रमी होगे तो काम आपसे हाथ जोड़ेगा। घर घर काम का रोना समाप्त हो जायगा। परिवार के लोग प्रसन्न होगे। आपके साधन मे बाधा नही डालेगे। घर मे कोई बीमार हो जाय तो उसकी सेवा ही साधना मान लीजिए। सेवा कीजिए और रात्रि मे या दिन मे अवकाश में उसके सिरहाने बैठकर अपने प्यार का हाथ मरीज के माथे पर रखिये, मन लगाकर भजन कीजिए। साधना भी अच्छी हो गई, मरीज भी खुश हो गया, परिवार भी सुखी है। झगड़े भी खत्म हो जायँगे। शान्त मन अधिक अच्छी तरह अपनी साधना में तत्पर हो सकता है। स्त्रियाँ चक्की चला सकती है। कुएँ

से पानी खीच सकती हैं। उनके लिए बड़ा ही लाभदायक है। बच्चे खेल कूद और बूढ़े टहलने आदि का व्यायाम कर सकते है।

स्नान

शरीर जब जल का स्पर्श करता है तो एक प्रकार की वायु का सचार होता है जिससे शरीर को बडा सुख मिलता है। नहाने के पहले किसी खुरखुरी तौलिया से आप अपने बदन को खूब रगड़िए। सारा अंग लाल हो जाय। फिर पानी से स्नान कीजिए। दोनो हाथो से खूब मलमल कर जोरो से 'घर्षण' स्नान कीजिए। बाद मे अच्छी तरह बदन पोछ कर वस्त्र पहन लीजिए। फिर ध्यान में बैठिए। देखिए कितना नशा आएगा कि तबीयत खुश हो जायगी।

सामान्य रूप से ठडे जल से स्नान करना चाहिए। किन्तु सप्ताह मे कम से कम एक बार और अधिक से अधिक दो बार गरम जल से स्नान करना चाहिए।

नाभि–स्नान—चार बाल्टी ठंडा पानी रख लीजिए नाभि पर तौलिया रख लीजिए। फिर पानी लोटे से डालना शुरू कीजिए। लगातार खूब ठडे पानी से नाभि को स्नान कराते रहने से आपको बड़ी शान्ति और शक्ति मिलेगी।

कटि स्नान—एक टब में ठंडा पानी भर कर उसमें इस प्रकार बैठिए कि दोनों पैर पानी के बाहर नीचे लटकते रहें और सीना पानी के ऊपर उठा रहे। धीरे धीरे नाभि पर हाथ फेरिए। सुख मिलेगा।

धारा स्नान—गगा जी अथवा किसी बहते हुए जल धारा मे स्नान करना कुछ समय उसमें बैठे रहना बड़ा ही लाभदायक है।

कुएँ का जल, झरने का जल जैसा भी जल मिल जाय स्नान हर अवस्था मे लाभदायक है।

किसी स्वच्छ स्थान पर प्रात काल अथवा सायकाल खड़े होकर खूब गहरी और लम्बी साँस खीचिए। अपने सीने को खूब हवा से भर लीजिए। कुछ क्षण रोकिए। फिर धीरे-धीरे छोड़ दीजिए। एक दम श्वास न छोडिएगा, नही तो यह झटका बड़ा हानिकारक सिद्ध हो सकता है। इस प्रकार दस पन्द्रह बार सुबह शाम कर लेने से शरीर मे उत्साह का अनुभव होगा।

केवल स्थूल शरीर का सयम पर्याप्त नही है। सूक्ष्म शरीर अथवा मन का सयम अत्यन्त आवश्यक है और उससे श्रेष्ठ है क्योकि यदि मन सयमित है तो फिर सारी साधना सरल हो जाती है। इसलिए निम्नलिखित बातो पर विशेष ध्यान देना है।

इन्द्रिय निग्रह—इन्द्रियो को विषयो की ओर जाने देने से रोकना अर्थात् उन्हें वश मे करना।

वैराग्य—साधक के जीवन मे वैराग्य भी आवश्यक है—'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण गृह्यते'। बिना वैराग्य के साधन नही चलता।

पवित्रता—पवित्रता वाह्य एव आन्तरिक दोनो प्रकार की होनी चाहिए। इसे लाने के लिए हमें सत्य, सरलता, दया, परोपकार, नि:स्वार्थपरता, दातव्य भाव, किसी के साथ किए गये उपकार और अपने प्रति किए गए अपकार के वृथा चिन्तन का त्याग, अहिसा एव ब्रह्मचर्य का निरन्तर अभ्यास करना चाहिए। किसी की आत्मा न दुखाना यही अहिसा है। चीटी को चीनी, बन्दर को चना और गाय को तो आटा खिलाना परन्तु बन्धुओ का गला काटना, उनको धोखा देना, छोटे जीवो को तग करना मारना अहिसा नहीं है। जो सबका कल्याण चाहता है, सबकी उन्नति एव सुख चाहता है वही सच्चा अहिसावादी साधु है।

साधक के जीवन में दो चीजे सबसे बडी है। यदि इनको उसने धारण कर रक्खा है तो फिर सारी साधना आसान हो जाती है—पहली है लगन, और

दूसरी अपने मार्ग मे दृढ़ता। यदि लगन प्रबल है तो मार्ग अवश्य मिलता है और दृढता बलवान है तो लक्ष्य की प्राप्ति अवश्य होगी—

नायमात्मा वलहीनेन लभ्यः

इसलिए आप मे जब तक आयुबल है, भुजबल है, मनोबल है, शरीर और इन्द्रियो मे बल है यानी जब तक यौवन है तब तक जो चाहिए कर लीजिए, अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर लीजिए, सदा के लिए कृतार्थ हो जाइए।

द्वितीय खण्ड

संकीर्तन

माता श्री कृष्णमयी के संकीर्तनों में गाए जाने वाले चुने पद और भजन
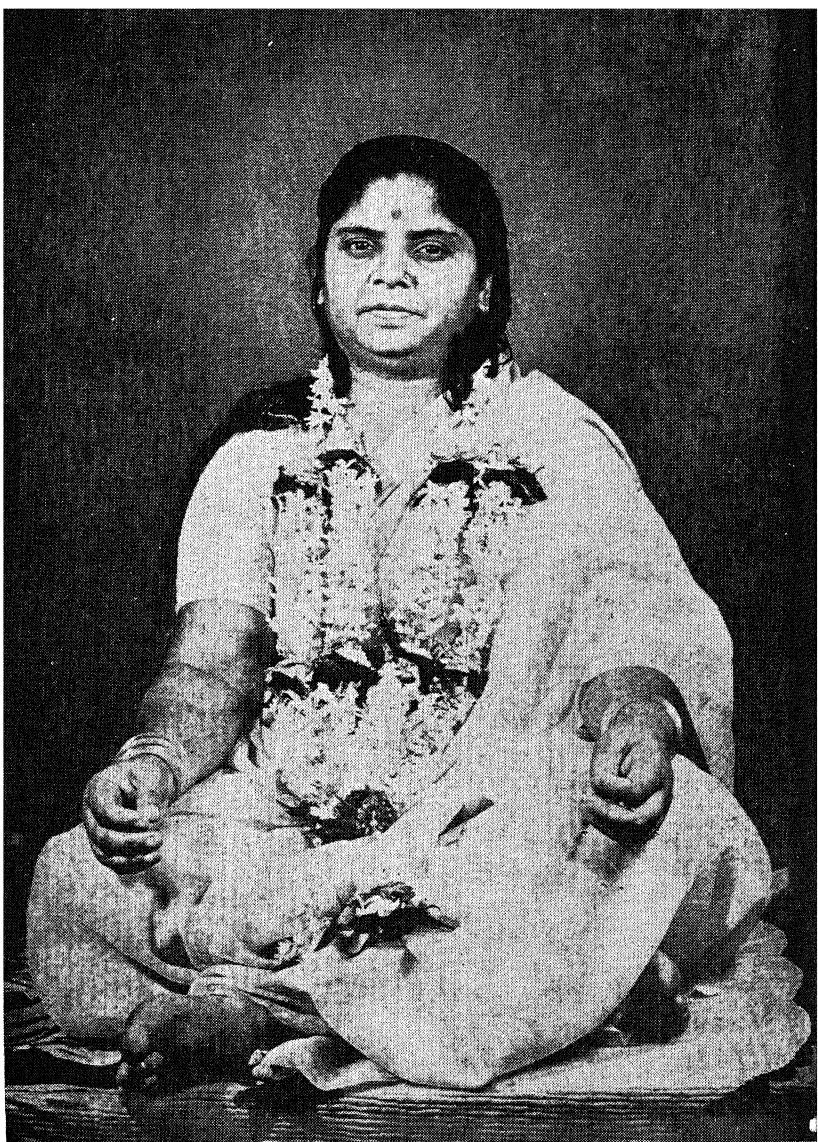
बंदना

[१]

गाइये गणपति जग बंदन
शंकर सुवन भवानी नंदन।
सिद्धि सदन गज बदन विनायक।
कृपा सिन्धु सुन्दर सब लायक ॥
मोदक प्रिय मुद मगल दाता।
विद्या वारिधि बुद्धि बिधाता ॥
मांगत तुलसिदास कर जोरे।
बसहु राम सिय मानस मोरे ॥

[२]

गणपति राखलो प्रण मेरा
थोडा जीवन भूल घनेरी
कैसे होय निबेरा.........
हठ धर्मी मन मानत नाहीं
समझायौ सौ बेरा.........
महिमा अमित मोर मति थोरी
प्रभू भरोसा तेरा......
मंगल होय निर्भय वल बाढ़े
दो वरदान सबेरा.........

[३]

ऐसो को उदार जगमाही।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर, राम सरिस कोउ नाहीं।

जो गति जोग बिराग जतन करि, नहि पावत मुनि ग्यानी।
सो गति देत गीध सबरी कहँ, प्रभु न बहुत जिय जानी।
जो सपति दससीस अरपि करि, रावन सिव पहँ लीन्ही।
सो सम्पदा विभीषण कहँ अति, सकुच सहित हरि दीन्ही।
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम काम सब पूरन, करहि कृपानिधि तेरो।

[४]

नमामि शंकर, नमामि शकर, नमामि शकर,
है तन पर भस्मी गले पे विषधर ।। नमामि ।।
जटा से गंगा की धारा निकली,
बिराजे मस्तक पे चाँद टिकुली,
सदा विचरते बने दिगम्बर ।। नमामि ।।
तुम्हारे मन्दिर में नित्य आऊँ,
तुम्हारी महिमा के गीत गाऊँ,
चढ़ाऊँ चन्दन तुम्हे मै घिसकर ।। नमामि ।।
तुम्ही हमारे हो एक स्वामी,
कहाँ हो आओ हे वृषभ गामी,
हरो हमारी व्यथा को आकर ।। नमामि ।।

[५]

भोला रे शिव शकर हो
तेरे बिन जिया मोरा लागे ना
सग-संग चलूँ तेरे मुख को न मोडूँ रे,
लोक लाज खोय प्रभु तेरे संग होलूँ रे

डम-डम बोले डमरू बोले
तेरे बिन जिया मोरा लागे ना.........
जब-जब डमरू बोले रे शकर
तब-तब भई मतवाली रे
शकर प्यारे आँखों के तारे
तेरे बिना जिया मोरा लागे ना... . ...
मै तो दासी जनम-जनम की
आई तिहारे द्वारे रे
कैलाश पती मोरी लाज रखो
तेरे बिना जिया मोरा लागे ना...... .....

[६]

सदा शिव हो तो कैलाशी ।
काहे को श्री गगा बही है काहे को काशी । सदा...
अरे मरे को श्री गगा वही है, तरने को काशी । सदा...
कहाँ से श्री गगा बही है कहाँ से काशी । सदा...
शिव के जटा से श्री गगा बही है, पत्थर से काशी । सदा...
जगह जगह शिवाला बने है, जहा बैठे मोर अविनाशी । सदा...

[७]

उमा मोरी छोटी, शिव बड़े बूढ़े ।
बूढ़े बर से ब्याह न करियो,
लाख कहै कोई खोटी ॥
जिनके घर में सास ननद नहि
कौन गुथेगा चोटी ॥
जिस घर गिरजा चरण धरेगी
साँप बिछी वहाँ लोटी ॥

भूत पिशाच शिव जी के साथी
कौन पथेगा रोटी ॥
बूढ़े बैल पर करके सवारी
भांग पिए भर लोटी ॥
पीठ फेर गिरजा मुसकानी,
रूप बदल दो स्वामी ॥
शिव जी हँसे दै ताली ॥
हाथ जोड़ कर बोली भवानी,
रूप पलट दियो स्वामी ॥
बारह वर्ष के शिव जी हो गए,
उमा से लागे प्यारे ॥
हाथ जोड़ कर बोली मैना रानी
सौपत अपनी बेटी ॥

[८]

शिव भोला न जागे जगाय हारी ।
ब्रह्मा जगावे बिष्णु जगावे,
नारद जगावे बजाय वीणा ।
गंगा जगावे यमुना जगावे,
सरस्वती जगावे लहर मारी ।
राधा जगावे रुक्मणि जगावे,
गौरा जगावे बजाय तारी ।
चन्दा जगावे तारा जगावे,
सूरज जगावे किरण डारी ।

[९]

श्री गंगे रानी तेरो जल अमृत नीर।
हरि के चरण कमल से निकसी,
शकर जटा समानी।
गंग नहाये ते पाप कटत है,
शीतल होत शरीर।
भागीरथी पर कीन्ह अनुग्रह,
आई हरन भव पीर।
पतित पावनी सुरसरि माता,
सबकी हरत उर पीर।
सर्व मनोरथ पूरन करनी,
झलकत निर्मल छीर।

[१०]

श्री रामचन्द्र कृपालु भज मन हरण भव भय दारुणं।
नवकंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुणं॥
कंदर्प अगणित अमित छवि नवनील नीरद सुंदरम।
पट-पीत मानहु तडिक रुचि सुचि नौमि जनक सुतावरं॥
भजु दीन बन्धु दिनेश दानव-दैत्य-वंश-निकदनं।
रघुनन्द आनन्द कन्द कौशल चन्द दशरथ नन्दनं॥
सिर मुकुट कुन्डल तिलक चारु उदार अंग विभूषणं।
आजान भुज शर-चाप-धर संग्राम-जित-खरदूषणं॥
इति वदति तुलसी दास शंकर शेष-मुनि-मन रन्जनं।
मम हृदय कंन्ज निवास कुरु कामादि खल-दल-गन्जनं॥

[११]

सब मिल कर आज जै कहा बजरंग बली की,
कर जोड़ कर विनती करो बजरग बली की।
जय के लिए बल के लिए कल्याण के लिए,
गुण कीति को गाते चलो बजरग बली की ॥
निर्भय बनो निरद्वन्द रहो आनन्द से रहो,
बस प्रार्थना करते रहो बजरग बली की।
लँगूर से रक्षा किया करते है वो जन की,
यह सत्य प्रतिज्ञा करो बजरग बली की ॥

[१२]

जा दिन सन्त पाहुने आवत।
तीरथ कोटि सनान करे फल, जैसे दरसन पावत ॥
नयो नेह दिन दिन प्रति उनके, चरन कमल चित लावत।
मन-बच कर्म और नहि जानत, सुमिरत और सुमिरावत ॥
मिथ्या वाद-उपाधि रहित है, बिमल बिमल जस गावत।
बंधन कर्म कठिन जे पहिले, सोऊ काटि बहावत ॥
संगति है साधू की अनुदिन, भव दुख दूरि नसावत।
सूरदास सगति करि तिनकी, जे हरि सुरति करावत ॥

गुरू महिमा

[१३]

आज गुरु अगना में आये,
जबहि गुरु मोरे अगना में आये, सखीरी मोरे बिगड़े सुधर गये काज।
सखी मेरे जगे पुरबले भाग। आज गुरु अंगना में आये।
जबहि गुरु मोरे अंगना में आये, सखीरी मोरे काम क्रोध गये भाग।
अपने गुरु के चरण को पाकर, सखी री मैं तो पा गयी भक्ती दान।
आज गुरु अगना में आये।

[१४]

एक शूल मोहि बिसर न काऊ।
गुरु कर कोमल शील स्वभाऊ।
गुरु न तजौ हरि को तजि डारौं।
गुरु के सम हरि को न निहारौ॥
हरि ने पाँच चोर दिए साथा।
गुरु ने लिए छुडाई नाथा॥
हरि ने माया जाल में घेरी।
गुरु ने काटी बन्धन मेरी।
हरि ने रोग भोग उरझायो।
गुरु जोगी करि सबहि छुटायो।
हरि ने मोसो आप छुपायो।
गुरु दीपक लै ताहि दिखायो॥
फिर हरि बन्ध मुक्ति गति लायो।
गुरु ने सबही बन्ध छुडायो॥
गुरु की अस्तुति कहँ लौ कीजै।
बदला कहाँ गुरू को दीजै॥

[१५]

मैं सादर शीश नवाती हूं,
गुरुदेव तुम्हारे चरणन में,
कुछ अपनी विनय सुनाती हूँ,
गुरुदेव तुम्हारे चरणन में॥

जिस-जिस योनि में भ्रमण करू
जो-जो शरीर मै ग्रहण करूँ,
तहँ कमल भृंगवत रमण करूँ,
गुरुदेव तुम्हारे चरणन में ॥
घर में आँगन मे देह रहे,
मन का पदपकज गेह रहे,
अनुदिन बढ़ता नव नेह रहे,
गुरुदेव तुम्हारे चरणन में ॥
तेरे गुण का होवे कीर्तन,
भूलूँ न कभी निशिदिन पलछिन
तन, मन, धन, मेरा हो अर्पण
गुरुदेव तुम्हारे चरणन मे ॥
धन दौलत की अब चाह नही,
परिवार छुटे परवाह नही,
होवे मेरा निर्वाह यही गुरुदेव तुम्हारे चरणन में ॥

[१६]

सतगुरु के संग क्यों न गई री ॥
सतगुरु सँग जाती सोना बन जाती ।
अब माटी के मोल भई री
सतगुरु है मोरे प्राण अधारा ।
तिनकी शरण मे क्यो न गई री ॥
सतगुरु स्वामी मै दासी सतगुरु की ।
सतगुरु न भूले मैं भूल गई री ॥
सार को छोड़ असार से लिपटी ।
धृग धृग धृग मतिमंद भई री ॥
प्रानपति को छोड़ सखी री ।
माया के जाल में अरझ गई री ।
जो गुरु हैं मोरे प्राण अधारा ।
उनकी शरण में क्यो न गई री ॥

[१७]

मन में गुरुदेव बुलाने को,
हम रोज पुकारा करते हैं।
पर आप न आते हो जब तो,
रो रो के गुजारा करते है।
दर्शन चरणों का पाने को,
उर मे गुरु ध्यान लगाने को।
सच तीनों लोक बनाने को,
हम राह निहारा करते है।
प्रभु तेरी पूजा करने को,
उर में चरणाम्बुज धरने को।
दुखमय भवसागर तरने को,
चरणो का सहारा करते है।
प्रभु तेरा भोग लगाने को,
भव का त्रय ताप मिटाने को।
शुचि भक्ति भाव जगाने को,
व्रत पावन धारा करते है॥
गुरु चरणामृत लेने को,
निज भक्ति परीक्षा देने को।
निज जीवन नैय्या खेने को,
तन मन धन वारा करते है॥
शुचि प्रेम प्रदीप जलाती है,
गुण रोज सदा ही गाती है।
निशिवासर बलि बलि जाती है,
पर आप किनारा करते हैं॥

[१८]

सतगुरु सतगुरु बोल मेरे मनुवा ।
इधर उधर मत बोल मेरे मनुवा ।।
भवसागर की गहराई में,
इधर उधर मत डोल मेरे मनुवा
इस गहराई के भीतर में,
मोती मोती रोल मेरे मनुवा
कंचन सी काया पाई है,
तूने यह अनमोल मेरे मनुवा
इस काया की तू प्याली मे,
गुरू नाम रस घोल मेरे मनुवा
माया मे क्यो भरमाया है,
दे खिडकी अब खोल मेरे मनुवा
दिल दे कर दिलवर मिलता है,
ज्ञान तराजू तोल मेरे मनुवा
गुरु सेवा गुरु भक्ति प्रथम कर
फिर निज हृदय टटोल मेरे मनुवा

[१९]

ना तन ही रहा, ना मन ही रहा,
गुरु मिलने से, झगड़ा खतम हो गया ।
मेरे गुरू ने पिलाया हरि नाम रस,
मेरा भीतर बाहर एक रंग हो गया ।
जो कि माता पिता, सुत दारा मिले,
बाजीगर वाला खेल खतम हो गया ।
अपने गुरू की बड़ाई कहाँ लौ करूँ,
मैं तो अज अविनाशी अमर हो गया ।

[२०]

नही सामर्थ है हम मे, जो गुण गुरुदेव के गाये।
यही सौभाग्य क्या कम है, कि श्री चरणों की रज पायें ॥
कहाँ हम अति पतित प्राणी, कहाँ पद पूज्य पावन वे।
अहेतुक हो गई करुणा, हुआ विधि बाम भी दाँये ॥
मिला आश्रय अभय हमको, तभी मे द्रढ भरोसा है।
कि पायेगी पराजय ही, जो आयेगी भी विपदाय।
हमारे शेष दुर्गुण भी, न रहने पायेगे कोई।
दया इस भाँति दासो पर, सतत् जब देव दिखलाये ॥
है, कितना प्यार भक्तो पर है कितना ध्यान भक्तो का।
इसे जब सोचते हम है, तो लोचन नीर भर लाये ॥
क्षमा अपराध करते है, हमारे क्लेश हरते है।
भुलाते है नही हमको, भले ही भूल हम जायें ॥
यथोचित रूप मे सेवा, न बन पाती, न श्रद्धा है।
तदपि सम्मान जो देते हमें, हम कैसे बतलायें ॥
उधर से हित पै हित होता, इधर से कुछ न बन पाता।
है रहता कष्ट ही देना, यही रह रह के पछतायें ॥
यही हो कम से कम हमसे, रहें हम पालते आज्ञा ॥
विनय कृष्णा की इतनी है, न छूटे द्वार अब तेरा ॥

[२१]

मिलता है सच्चा सुख केवल, गुरुदेव तुम्हारे चरणों मैं
भगवान तुम्हारे चरणों में, भगवान तुम्हारे चरणों में
यही विनती है पल-पल छिन-छिन रहे ध्यान
जिभ्या पर तेरा नाम रहे, हर वक्त सुबह और शाम रहे
बस काम ही आठो याम रहे, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में

चाहे बैरी सब संसार बने, मेरा जीवन तुझ पर वार रहे
चाहे मौत गले का हार बने। रहे ध्यान
चाहे संकट ने मुझे घेरा हो, चाहे चारो ओर अँधेरा हो
चाहे चित्त ही मेरा डगमग हो, रहे ध्यान... ....
चाहे आग में मुझको जलना पडे, चाहे काँटो पर मुझ कोचलना प
चाहे दर-दर पे मुझको रोना पडे। रहे ध्यान......

[२२]

मोरी लागी लगन गुरु चरणन की,
चरण बिना मोहे कछु नहि भावे, जग माया सब सपनन की।
भवसागर सब सूखि गयो है, फिकर नही मोहे तरनन की।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, आस वही है प्रभु चरणन की॥

[२३]

ऐसी करी गुरुदेव दया मेरा मोह,
का बन्धन तोड़ दिया।
सपने सम विश्व दिखा करके,
मेरे चचल चित को मोड़ दिया।
दौड़ रहा निशिवासर मैं जग के,
सब कार विहारन में।
एक आतम तत्व लखाय दिया,
सब द्वैत का भंडा फोड़ दिया।
कोई सेस महेश गनेश रटे,
कोई पूजत पीर पैगम्बर को।
सब पथ के ग्रन्थ छुड़ा करके,
एक आतम में चित जोड़ दिया।

कोई जावत है मथुरा नगरी,
कोई जाय बनारस वास करे।
जब व्यापक रूप पहिचान लिया,
सब भरम का भडा फोड दिया।

[२४]

गुरुदेव तुम्हारे मन्दिर मे, मै तुम्है रिझाने आया हु।
बाणी में तनिक मिठास नही, पर विनय सुनाने आया हूँ।
प्रभु का चरणामृत लेने को है पास मेरे कोई पात्र नही।
आँखो के दोनो प्यालो में मै भीख माँगने आया हू।
तुमसे लेकर क्या भेट धरूँ, भगवान आपके चरणो में।
मै भिक्षुक हू तुम दाता हो, सम्बन्ध बताने आया हू।
पूजा की कोई वस्तु नही, फिर भी देखो साहस मेरा।
रो रोकर आज आसुओ का, मै हार चढ़ाने आया हू॥

[२५]

सजनी सावन लग्यो सुहावन जब से सतगुरु दाया कीन्ह।
बिन प्रीतम के बन २ डोलूँ, बनकर दुखिया दीन॥
सतगुरु के सकेत करत ही, निजपति लीन्हों चीन्ह॥
सत संगत के रँग मे सुन्दर, चूनर रंगी नवीन॥
ब्रह्मचर्य की मेहदी रच गई, सुमति सखा प्रवीन॥
सुरत डोर का डार झूलना, बैठी सुख आसीन॥
गुरू ज्ञान का लगा झकोरा, बाजी अनहद बीन॥
सुखसागर की थाह मिलत नहि, होकर व्यथा विहीन॥
दासी स्वरूप लखि सुध बुध भूली, ऐसी हो गई लीन॥

[२६]

साधो सो सतगुर मोहि भावे ॥
सन्त प्रेम का भर भर प्याला,
आप पिये औ मोहि प्यावे ।
परदा दूर करे अखियन का,
ब्रह्म दरस दिखलावे ॥
जिस दरस में सब लोक दरसे,
अनहद शब्द सुनावे ।
कहै कबीर ताको भय नाही,
निर्भय पद परसावे ॥

[२७]

लगन बिन जागे न निर्मोही ।
बिना लगन के प्रीति बावरी, ओस नीर ज्यो धोई ।
हम तो रहते राम भरोसे, राम करे सोइ होई ।
बिन सतगुरु कृपा नही होई, लाख जतन करे कोई ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, बिन गुरु मुक्ति न होई ।

[२८]

ओ प्रीत लगाने वाले, सतगुरु से प्रीत लगा ले
दर दर के भटकने वाले, दुनिया से दिल को हटा ले
जब जान लिया जग फानी संसार है एक कहानी
दुनिया को बसाने वाले, हृदय में गुरु को बसा ले
इस जग में कौन है तेरा, दो दिन का रैन बसेरा

उठ जाग ओ सोने वाले, सतगुरु के गुण को गा ले ॥
सर पे है मंजिल भारी, उठ बांध कमर ससारी
जीवन को लुटाने वाले, बिगड़ी को फिर से बना ले।
अब राज रंक नहि पाए, जीवन का कोई उपाय
ओ राही जाने वाले, एक ज्ञान का दीप जला ले ॥

[२६]

सतगुरु तुम्हारे नाम की माला जपेंगे हम।
जन्मों तलक हुजूर के खादिम रहेगे हम।
बेहद मिठास नाम तुम्हारे में है भरी।
सो जानता है दिल में लगन जिसके हो लगी।
उसको ही खुश नसीब जहाँ में कहेगे हम।
बख्शी तुम्ही ने हमको है दाता यह जिन्दगी।
किस काम के तुम्हारे न अर्पण अगर हुई।
कुर्बान जान दिल को तुम्ही पर करेंगे हम।
इस जीव को पकडने फँसाने के वास्ते।
स्वारथ का जाल माया ने हर सू बिछाया है।
तुम ही न गर बचाओ, तो कैसे बचेंगे हम।
चाहत नही है दुनियाँ की दुनियाँ है बेवफा।
अब तो तुम्हारे प्यार मे यह दिल है मुबतिला।
इस प्यार के सहारे पर हरदम जियेगे हम।
दिल मे तुम्हारे प्रेम की दिन रात प्यास है।
चरणो की भक्ति माँगता दासो का दास है।
एहसान का न बदला कभी दे सकेगे हम।
जन्मों तलक हुजूर के खादिम रहेगे हम।

[३०]

गुरुदेव दया जब करते हैं,
उरके कपाट खुल जाते हैं।
श्री चरणों की रज लेते है,
जीवन के अघ धुल जाते है।
जो गुरु चरणामृत पीते है,
मस्ती से जग में जीते है।
मिलते सच सभी सुभीते है,
कॉटे भी गुल बन जाते है।
पद रज नित शीश चढाते है,
सादर हम शीश झुकाते है।
गुरुध्यान में चित्त लगाते है,
मन में अतिशय सुख पाते है।
यह रज अमृत की बूटी है,
सचमुच जीवन की घूटी है।
यह औषधि एक अनूठी है,
इससे भव रोग नसात है।
जब ध्यान हृदय मे धरते है।
तब सुख का अनुभव करते है।
तम-तोम हृदय के हरते है,
जब गुरु दर्शन पा जाते है।
गुरु भक्त शरण में आई है,
जग में यह ठोकर खाई है।
अब जीवन धन को पाई हैं,
फिर प्रेम से जै जैकार करो।

प्रार्थना

[३१]

ईश्वर तेरे दरबार की महिमा अपार है,
बन्दा न सके जान तेरा क्या विचार है
पृथ्वी जलों के बीच में किस आसरे खड़ी,
सूरज और चाँद घूमते किसके अधार है
सागर न तीर लाँघते सूरज दहे नही
चलती हवा मर्याद से किसके करार है
भूमि बिछा है बिस्तरा नदियों मे जल भरा,
चलती हवा दिन-रात है जीवन अधार है
फल फूल अन्न शाक कन्द मूल रस भरे
घृत दूध दही खान पान की बहार है
पिता है तू दयाल तेरे बाल हम सभी,
ब्रह्मानन्द तुझे धन्यवाद बार-बार है

[३२]

सुनेरी मैंने निर्बल के बलराम।
पिछली साख भरूँ मै सन्तन की, अड़े संवारे काम।
जब लग गज बल अपनो बरत्यो, नेकु बन्यो नहि काम।
निरबल ह्वै बलराम पुकारे, आये आधे धाम।
द्रुपद सुता निरबल भई जा दिन, तजि आये निज धाम।
दुःशासन की भुजा थकित भई, वसन रूप भये श्याम।
अप-बल तप-बल और बाहु बल, चौथे हैं बल दाम।
सूर किशोर कृपा ते सब बल, हारे को हरि नाम।

[३३]

लगेगी लगन श्याम से धीरे - धीरे,
हटा दो बुरे काम को धीरे - धीरे।
चलेगे जो सतपथ तो निश्चय ही होगी,
मुलाकात सुखधाम से धीरे - धीरे।
बड़ी नम्रता से सदा सिर झुका कर,
मिलो मूढ़ अभिराम से धीरे - धीरे।
नहीं प्रेम होता किये जल्दबाजी,
सुबह तक करो शाम से धीरे - धीरे।
मद-मोह-माया के फन्दे से हटकर,
करो प्रेम घनश्याम से धीरे - धीरे।
ज्योति से ज्योति मिलाओ रे मूरख,
करो प्रेम हरिनाम से धीरे - धीरे।
आए शरण में है अशरण शरण दो,
बढ़ा दो मेरे नाम को धीरे - धीरे।

[३४]

किशोरी मोरी बिगड़ी देहु बनाय।
अति कोमल स्वभाव माँ तुम्हारा, वेद पुरानन गाय।
कासों कहूँ सुने को तुम बिन, मुझ दुखिया की माय।
मेरी दशा भली तुम जानत, कबहु न अघन अघाय।
कपटी कुटिल कुपूत रावरो, इत उत ठोकर खाय।
भक्ति भाव कछु जानत नाहीं, बनत रसिक रसराय।
अपनी ओर निहार राधिके, अब तो लेहु अपनाय।
तुमरो माय कहाय पूत अब, काके द्वारे जाय।
यह कृपालु हठ पुरवहु राधे, न तु सुत मातु लजाय।

[३५]

किशोरी मोरी अब न लगावो बेर।
माँगत भीख कृपा की केवल, खड़ी तिहारे द्वार।
रसिकन मुख अस सुनी दीन को आदर येहि दरबार।
देर होत अँधेर नही वस, इहै रह्यो आधार।
बेर भये जनि जानेहु तजिहौ, हौ जड़ हठी गँवार।
कहि हौ नहि कृपालु काहु सो, आइ जाइ इक बार।

[३६]

हमारे प्रभू कैसे है भोले भाले
वृन्दा बन की कुज गलिन में, नाचत सग ब्रज ग्वाले।
खेलत गेद गिरो यमुना मे, कूद पडे मतवाले।
नाग नाथि जब फन पर बैठे, गोरे से हो गये काले।
सब भक्तन की लज्जा राखी, आये है तुम्हारे दुआरे। हम।रे।

[३७]

मुझे केवल आस तिहारी,
दर्श देओ गिरधारी ——।
कब से तुमको ढूँढ़ चुकी हूँ
ढूँढ ढूँढ़ कर हार थकी हूँ
अब ज्यादा न तरसावो।
रात अँधेरी घूमर घेरी
दीप नही है फिरहुँ अकेली
आओ ज्ञान का दीप जलाओ।

डगमग डगमग डोले नइया
इस नैया के तुम हो खेवैया
आओ प्रेम का चाप चढ़ावो
आओ जी मोरे गिरधारी ।

[३८]

अब कैसे छूटे राम रट लागी ।
प्रभु जी तुम चन्दन हम पानी,
जाकी अंग अंग बास समानी ।
प्रभु जी तुम घन बन, हम मोरा,
जैसे चितवत चन्द्र चकोरा ।
प्रभु जी तुम मोती हम धागा,
जैसे सोनहि मिलत सुहागा ।
प्रभु जी तुम दीपक हम बाती,
जाकी ज्योति बरै दिन राती ।
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा,
ऐसी भगति करै रैदासा ।

[३९]

श्याम चरणों में मन को लगाए जायेगे ।
अपने जीवन की ज्योति जगाए जाएगें ॥
हजार बार कृपागार से करार हुआ ।
मगर न उनका भजन दिल से एक बार हुआ ॥
विषय में भूख में निद्रा में दिन गुजरते है ।
मनुष्य हो के भी पशुओं काम का करते है ॥

ऐसी बिगड़ी दशा को बनाए जाएगें। श्याम चरणों-
समझ रहे हैं कि संसार हमारा होगा।
मित्र पुत्र ये परिवार हमारा होगा ॥
नहीं है ध्यान जब काल प्राण लेता है।
तो गैर क्या ये तन भी न साथ देता है ॥
ऐसी दुनिया से नाथ बचाए जाएगें ॥ श्याम–

[४०]

वो नन्दनन्दन जिस दिल में मेहमान होगा।
बड़ा भाग्यशाली वो इन्सान होगा।
तहाँ कृष्ण प्यारे का गुण गान होगा।
वहीं स्वर्ग के सुख का सामान होगा ॥
लगन मन में दर्शन की पैदा तो कर लो।
उपस्थित स्वयं आके भगवान होगा ॥
जहाॅ को मैं करुणा रुदन से हिला दूँ।
मगर खौफ है वो परेशान होगा ॥
जो दासी को दासों के दल में मिला लो।
मेरे मन के स्वामी का अहसान होगा ॥

[४१]

अपना पन रखना मोरे घनश्याम।
मुझे न भुलाना मोरे घनश्याम ॥
घड़ी घड़ी पल पल नाम तिहारो।
रटै मेरी रसना मोरे घनश्याम ॥

ललो-लाल दोउ दै गरबाहीं।
हमारे हिय बसना मोरे घनश्याम।
भाव-हिडोंरे डारि हिए में।
झुलाऊँ नित झुलना मोरे घनश्याम॥

[४२]

तुम्हारे दया की आस हमें प्रभू, आया हूँ तुम्हारे द्वार प्रभू जी।
शीश धरे हुये पाप की गठरी, आया हूँ तुम्हारे द्वार प्रभू जी॥
तुम हो जगत के पालन हारे, मैं हूँ तुम्हारा दास प्रभू जी।
विष अमृत संग और अनिल हिम, तार सकहुं बिन बेर प्रभू जी॥
यह जिय समुझि रहहुँ सब तजि मैं, आन पड़ा तोरे द्वार प्रभू जी।
जोग विराग जतन नही जानी, जप तप साधन हानि प्रभू जी॥
कृष्ण प्रिया को पार करहु अब, परी तुम्हारे पांव प्रभू जी॥

[४३]

नैंन हीन दु:ख पायो प्रभू जी मोरे
छणि सुख लागि सहत धारो दु ख मूरख जग लपटाई॥
दु:ख अपमान सहत निशि बासर या जग की कटुताई।
तबहु अघाय कहत मन नाही अब भजिहौं रघुराई॥
ये माया भ्रम जाल निवारो मन मेरो भरमाई।
कृष्ण प्रिया की लज्जा राखो गहो बाँह अब आई॥

[४४]

अवध धाम में दिन गुजारा करेंगे :
सियाराम राघव पुकारा करेगे॥

सियाराम छबि सिन्धु में मीन बनकर।
नयन रूप निशदिन निहारा करेगें॥
सदा साधु सतसंग सरयू सलिल से।
ये मलमल के मन मल पखारा करेगें॥
अमर नाम पीयूष पीकर के मुख से।
जनम और मरण से किनारा करेगे॥
श्रवणपुर में भर भर के गुण ग्राम हरि के।
सदा तृप्त मन मस्त प्यारा करेगे॥
खुलेगा न क्यों कोष करुणा का मंजुल।
जो रघुबर पर तन मन ये वारा करेगें॥

[४५]

श्याम पिया मोरी रंग दे चुनरिया।
चाहे रग दे, चाहे मोल मँगाय दे।
प्रेम नगर की लागी बजरिया।
ऐसी रगियो जो रंग नही छूटे।
धोबिया धोय चाहे सारी उमरिया।
बिना रँगाए मै घर को नहि जाऊँगी,
चाहे बीत जाय मेरी सारी उमरिया।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छबि
हरि के चरण चित लागी नजरिया।

[४६]

पुकारे-पुकारे चले जाएंगे हम
मन को रमाए चले जाएंगे हम।

कभी द्रौपदी ने तुमको पुकारा
गज ने भी रो कर तुमको पुकारा
मीरा ने गाकर तुमको पुकारा
अजामील प्रहलाद, ध्रुव ने पुकारा
सुनाते–सुनाते चले जाएगे हम.................
सब की सुनी फिर क्यो न सुनोगे
खाली है झोली क्यो न भरोगे
मन मन्दिर मे क्यों न जगोगे
दीन बन्धु हे दया अब कब करोगे
मनाते–मनाते चले जाएगें हम........

[४७]

अब मैं नाच्यों बहुत गोपाल ।
काम क्रोध को पहिर चोलना, कंठ विषय को माल ।।
महामोह के नूपुर बाजत, निन्दा शब्द रसाल ।।
भरम भरयो मन भयो पखावज, चलत कुसंगत चाल ।।
तृष्णा नाद करत घट भीतर, नाना विधि दै ताल ।।
माया को कटि फेंटा बांध्यो, लोभ तिलक दै भाल ।।
कोटिक कला कांछ दिखराई, जलथल सुध नहि काल ।।
सूरदास की सबै अविद्या, दूरि करो नन्दलाल ।।

[४८]

मेरा उद्धार करने को तेरी रहमत ही काफी है
हमारे पाप हरने को तेरा दरबार काफी है
यहाँ संसार सागर में अगर मैं नाथ डूबी हूं
तेरी रहमत के सागर में एक डुबकी ही काफी है

नही है गम मुझे मरने का मेरे सामने तू है
जिलाने को नजर रहमत की तेरी एक काफी है।
नशा उतरे जमाने का भला यह बात ही क्या है
दीन दुनियाँ भुलाने को तेरी प्याली ही काफी है
हजारों स्वर्ग इन कदमो पै आकर के निछावर हैं
हमारे सामने तू है यही बैकुण्ठ काफी है
भंवर में आ पडी जीवन की नैया ए थपेडों में
ये नैया पार करने को प्रेम ठोकर ही काफी है
नहीं कोई हमारा इस जहॉ में पूछने वाला
तेरा एक बार कह देना तू मेरा है ये काफी है
नहीं कोशिश तरफसे मेरी कुछ है खिचकेआओतुम
हमारे खीच लाने को तेरी जंजीर काफी है
किसी को क्या पडी देखे जो वह ऐबो-हुनर मेरे
हमारी आह पर तू वाह करने वाला काफी है
मेरे अरमानो दिलपर शौकसे रखकर चला खंजर
मेरे जख्में जिगर के जख्म का ही शौक काफी है

[४९]

जागो मोहन प्यारे सवेर भयो।
गंगउ जागीं जमुनउ जागी,
जागे नौ लख तारे सबेर भयो।
चन्दउ जागे सूरजउ जागे लाला,
जागे गंगा के नहवइया सबेर भयो।
मात यशोदा जल भर लावे लाला,
मुखडा धोय कन्हैया सबेर भयो।
सब गोपिन मिल छॉछ बिलोवें लाला,
माखन खावो कन्हैया सवेर भयो।

[५०]

बिगड़ी बनाने वाले बिगड़ी बना दे,
नैय्या हमारी पार लगा दे :
नइया हमारी तेरे हाथ मे है,
चाहे डुबा दे चाहे उठा दे।
नइया हमारी पार लगा दे।
इधर भी है काँटे उधर भी है काँटे,
चाहे तो काँटो को कलियां बना दे।
नइया हमारी पार लगा दे।
दासी कृष्णा जनम जनम की,
चाहे गिरा दे चाहे उठा दे।
नइया हमारी पार लगा दे।

[५१]

हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों।
साधन धाम विबुध दुर्लभ तनु मोहि कृपा करि दीन्हों॥
कोटिहुँ मुख कहि जात न प्रभु के एक एक उपकार।
तदपि नाथ कछु और मांगिहौं दीजै परम उदार॥
विषय वारि मन मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
तातें सहौ विपति अति दारुन, जनमत जोनि अनेक॥
कृपा डोरि वनसी पद अंकुस परम प्रेम मृदु चारो।
एहि विधि वेधि हरहु मेरो दुख कौतुक राम तिहारो॥
हैं श्रुति विदित उपाय सकल सुर केहि-केहि दीन निहोरै।
तुलसिदास यहि जीव मोह रजु जोई बाँध्यो सोई छोरै॥

मिला न मुझको कहीं सहारा।
होश हुआ तब तुम्हें पुकारा,
अब मत देर लगावो ॥ हे जीवन०
तुम किस विधि देते हो दर्शन,
कैसे निश्चल हो चंचल मन।
कौन सुलभ मिलने का साधन,
वही मुझे बतलाओ ॥ हे जीवन०
तुम ही अपना ऐसा बल दो,
तुम्ही हमारे दोष कुचल दो।
तुम ही मुझको मति निर्मल दो,
निज अनुकूल बनाओ ॥ हे जीवन०
अब प्रभु बिन कुछ भी न सुहाये,
चाहे कुछ भी आये जाये।
पथिक हृदय तुम ही को दर्शाये,
अब न कहीं भरमाओ ॥ हे जीवन०

[५५]

रघुबर तुमको मेरी लाज।
पतित उद्धारन बिरद तिहारी,
श्रवनन सुनी आवाज।
हौं तो पतित उद्धारन कहिये,
यही तिहारो काज।
अघ खंडन भंजन भव-दु:ख के,
पार उतारो जहाज।
तुलसिदास को शरण राखिये,
भक्तिदान देहु आज।

[५६]

जीवन का मैने सौप दिया सब भार तुम्हारे हाथों में।
उद्धार पतन अब मेरा है, सरकार तुम्हारे हाथों में।
हम तुमको कभी नही भजते, फिर भी तुम हमें नहीं तजते।
अपकार हमारे हाथो में, उपकार तुम्हारे हाथो में।
हममें तुममें है भेद यही, हम नर और तुम नारायण हो।
हम है संसार के हाथों में, संसार तुम्हारे हाथों में।
कल्पना बनाया करती हूं, इक विरह सेतु के सागर में।
जिससे हम पहुचा करते है सरकार तुम्हारे हाथों में।
दृग बिन्दु कह रहे है भगवन दृग नाव विरह के सागर में।
मझधार हमारे हाथों मे, पतवार तुम्हारे हाथों में।

[५७]

तुम मेरी राखो लाज हरी।
तुम जानत सब अतरयामी, करनी कछु न करी।
अवगुन मोते बिसरत नाही, पल छिन घरी घरी।
छल प्रपच की बाँधि पोटरी, अपने शीश धरी।
सुत दारा धन मोह लियो है, सुध बुध सब बिसरी।
सूरदास को बेगि उबारो, अब मोरी नॉव भरी।

[५८]

हमारे प्रभु अवगुन चित न धरो।
समदरसी है नाम तुम्हारो, सोई पार करो।
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर वधिक परो।
सो दुविधा पारस नहि जानत, कंचन करत खरो।

इक नदिया इक नार कहावत, मैलो नीर भरो।
जब मिलि गए तब एक वरन है, गंगा नाम परो।
तन माया ज्यो ब्रह्म कहावत, सूर सु मिलि बिगरो।
कै इनको निरधार कीजिये, कै प्रन जात टरो॥

[५९]

हे गोविन्द राखु शरण अब तो जीवन हारे।
नीर पीवन हेतु गयो सिन्धु के किनारे।
सिन्धु बीच बसत ग्राह चरन धरि पछारे।
चार प्रहर युद्ध मचो लै गयो मझधारे।
नाक कान डूबन लागे कृष्ण को पुकारे।
द्वारिका मे शब्द गयो गरुड़ तजि सिधारे।
ग्राह को मारि के गजराज को उबारे।
सूर कहे श्याम सो आश हूं तुम्हारे।

[६०]

मुझे रख लो शरण में आज, प्रभू तोरी पइयाँ परूं।
देखत तुम्हरे अवगुण किये बहु, आई न मोहे लाज–प्रभू
नही देखो मोरे अपराध–प्रभू
भरि भरि उदर विषय को धायो, अबहु न आये बाज–प्रभू
भव सागर में डूब रही हू, पार उतारो जहाज–प्रभू
तुम्हरे जस प्रभु गान करूं अब, बोलो केहि पर नाज–प्रभू
जनम जनम की मैं दुखियारी, राखो हमारी लाज–प्रभू
तुम तजि और कौन पै जाऊं, साजक बिगड़े साज–प्रभू
पतित उधारन नाम तुम्हारो, यही तिहारो काज–प्रभू
कृष्ण प्रिया को चरण राखियो, भक्ति दान देहू आज–(मुझे)।

[६१]

जागो बंशी वारे ललना
जागो मोरे प्यारे ॥
रजनी बीती भोर भयो है,
घर घर खुले किवारे।
गोपी दही मथत सुनियत है,
कंगना के झनकारे।
उठो लाल जी भोर भयो है,
सुर नर ठाढ़े द्वारे।
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल,
जय जय शब्द उचारे ॥
माखन रोटी हाथ मे लीन्हीं,
गउवन के रखवारे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर,
शरण आये को तारे ॥

[६२]

तू दयाल दीन हौ, तू दानी हौ भिखारी
हौ प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुजहारी
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो ?
मो समान आरत नहि, आरतिहर तोसो
ब्रह्म तू हौ जीव तू ठाकुर हौ चेरो
तात-मात गुरु सखा, तू सब विधि हितु मेरो।
तोहिं-मोहि नाते अनेक, मानियै जो भावै
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु। चरन सरन पावै

[६३]

छोड़ बैठा है सारा जमाना, नाथ अब आप ही दो ठिकाना ··
पातको की घटा घोर घमसान है,
और जगसिन्धु का वेग बलवान है,
काम मद क्रोध माया का तूफान है,
देह जलयान का जीर्ण सामान है,
चाहते है ये मिलकर डुबाना । नाथ——— -
क्या तुम्हे दीन गज ने पुकारा नहीं
क्या दुखी गीध था तुमको प्यारा नही
क्या यवन पिंगला को उबारा नहो
क्या अजामिल अधम तुमने तारा नही
फिर बनाते हो क्यो कर बहाना । नाथ · ·· ··
किसके कदमों पर नीचा ये सर मै करूँ
आह का किसके दिल पे असर में करूँ
किसका घर है कि जिस घर में घर मै करूँ
अश्रु के विन्दु किसके नजर मै करूँ
आखिरी है ये बिनती सुनाना । नाथ ··— ··

[६४]

श्याम मुरारी गिरवर धारी।
लीजो खबर हमारी रे सांवरिया,
हम आई द्वार तिहारी रे सांवरिया।
मोहन प्यारा मुरली वाला,
कुवर कन्हइया आजा तू आजा।
अब राखो लाज हमारी रे सांवरिया।
मैं आई शरण तिहारी रे सावरिया।

[६५]

जो भी आया बिक गया,
मोहन तेरे दरबार में।
भेद कुछ भी रह न पाया
माल औ खरीदार में॥

नटवर कृपा की दृष्टि तेरी,
हो गई जिस भक्त पर।
हो गया वह मस्त चिन्ता
हीन इस संसार में॥

जिसके हृदय में नैन में,
मस्ती तुम्हारी छा गई।
वो ही शोहरत पा गया,
इस प्रेम के बाजार में॥

कैसा फल मीठा मिला,
हमको तुम्हारी याद में।
ससार के नाते सभी,
छूटे है तेरे प्यार में॥

अवगुणों पर भक्त के,
देते न किंचित ध्यान वे।
यह तो आदत है भली,
सचमुच मेरे करतार में॥

अपना पराया भेद उसको,
रास आता है नही।
इस पार से जाकर मिला,
प्रिय से वहाँ उस पार में॥

चेतावनी

[६६]

किते दिन हरि सुमिरन बिन खोए ।।
पर निंदा रसना के रस करि केतिक जन्म विगोए ।
तेल लगाइ कियौ रुचि मर्दन, बस्तर मलि मलि धोए ।
तिलक लगाइ चले स्वामी बनि बिषयनि के मुख जोए ।।
काल वली ते सब जग कॉप्यो, ब्रह्मादिक हूँ रोए ।।
सूर अधम को कहौ कौन गति उदर भरे परि सोए ।

[६७]

रे मन समुझि की लाद लदनियाँ,
जो इच्छा हो सोई जग खा ले, आगे हाट न बनियाँ । रेमन ।।
जो इच्छा हो सोई जग पी ले, आगे देश निपनियाँ ।।
थोड़ी लाद बहुत मत लादे, टूट जाय गरदनियाँ । रे मन ।
सूरदास संतन को सरबस, काल के हाथ न बनिया । रे मन ।।

[६८]

भजो रे भइया राम गोविन्द हरी ।
जप, तप साधन कछु नहि लागत,
खरचत नहि दमरी ।
संतति संपति सुख के कारन,
तोसो भूल परी ।

कहे कबीर राम नहि जा मुख,
ता मुख धूल भरी।

[६९]

मन न रंगाये रंगाये जोगी कपडा,
आसन मारि मन्दिर में बैठे
राम नाम छाँड़ि के पूजन लागे पथरा।

मथवा मुड़ाय योगी जटवा बढौले
दढ़िया बढ़ाय जोगी होय गैले बकरा।

जगल में जाय जोगी धुनियाँ रमौले
काम जराय जोगी होइ गैले हिजरा।

मथवा मुडाय योगी कपडा रंगाउले
गीता पोथी बाँचि के होय गैले लबरा।
कहै कबीर सुनो भई साधो
जम के दरवजवा बाँधल जइबे पकरा॥

[७०]

बतादे गुइयाँ कौन बरन मेरो सइयाँ।
जा घर का मारग नही जानू धरो कवन विधि पइयाँ॥
अपने पति को चीन्हत नाहीं, बैठौ कवन की छइयाँ॥
पकड़न गई पकड नहिं पाई, हो गई भोर भुलइयाँ॥
संग की सहेली इतनी चातुर, कर गई कान भरइयां।
तीन पना धोखे मे बीत गये, [illegible] ढूढ़ ढुड़रियाँ॥
चित पसार के देख ले सजनी, कोई किसी का नहियाँ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, अब सुधरनि की नहियाँ॥

[७१]

भाव से भगवान को जो, भक्त भजता जायगा।
सोइ महाभागी हो सच्चा, भक्त जन कहलायगा॥
सर मुड़ा या रख-जटा या दण्ड ले या अंग रंग।
लाख कर नहिं प्रेम बिन तू, उस पिता को पायेगा॥
तन का रंगना छोड़ कर तू, मनका रंगना सीख ले।
मत भटक बन-२ में घट में ही तेरे दरसायेगा॥
मन का दर्पण शुद्ध कर तज मान और घमंड को।
पी ले चरणामृत गुरू का, तब प्रभु दिखलायगा॥
ध्यान कर श्री लाल घट मे, ब्रह्म आनन्द है यही।
ब्रह्म आनन्द में जो डूबा फिर न जग में आयगा॥

[७२]

डरते रहो जिन्दगी, बरबाद न हो जाय।
सपने में किसी जीव का अपकार न हो जाय॥
पाया है तन अमोल सदाचार के लिये।
विषयो में फँस कर अपनी कही हार न हो जाय॥
सेवा करो सब देश की शुभ कर्म हरि भजन।
इतना भी करके तुमको कही अहंकार न हो जाय॥
मंजिल असल मुकाम की तै करनी है तुम्हे।
जग ठग नगर में फँस कर गिरफ्तार न हो जाय॥
माधव लगी है बाजी, माया मोह जाल की।
धोखे में पड़ के अब की कही हार न हो जाय॥

[७३]

अनोखा जादूगर भगवान ।
वही बनाये वही मिटाये, मिट्टी को इन्सान ।
कभी खिलौने बातें करते, कभी बढ़ाते प्यार ।
हेर फेर की बाते करते, कभी करे सब रार ।
वही हँसाता वही रुलाता, कब समझे नादान ।
दो ही दिनों में रंग धुलेगा, कौन चलेगा सग ।
चलने से पहले दुनिया मे, आ जाने दो काम ।

[७४]

आनन्द सिधु परमेश्वर को, मन भज ले बारम्बार,
जो अविरल विश्व का जीवन है, प्रभु अनुपम सर्वाधार ।
जिसके कारण नाना तन धर यूँ,
भटक रहे हो इधर उधर,
वह निधि तो है तेरे अंदर,
तू खोज फिरा संसार ।।

इस तन का कौन ठिकाना है,
कुछ दिन में ही तो जाना है,
क्यूँ माया में तू दीवाना है,
करले अपना उद्धार ।।

धन है तो कुछ नेकी कर ले,
बल विद्या से भक्ति कर ले
श्री सद्गुरु का आश्रय कर ले,
हो जाये भव से पार ।।

[७५]

हरि बिन तेरा कौन सहाई।
काकी मातु पिता सुत वनिता को काहू को भाई।
धन धरनी अरु सम्पति सगरो, जो मान्यो अपनाई।
तन छूटे कछु संग न चलिहैं, कहा ताहि लपटाई।
दीन दयाल सदा दुख भंजन, तासो रुचि न बढाई।
नानक कहत जगत सब मिथ्या, ज्यों सुपना रैनाई।

[७६]

प्रभु चरनन में नेहा लगाय रे मनुवा,
लख चौरासी के फन्दे से छुटकर।
मानुष जन्म भा तोहार,
जीवन को सफल बनाय ले मुसाफिर।
जीवन बीता तोहार,
प्रभु के रंग में रंग जा रे जोगिया।
छाड़ों जगत केरी आस,
प्रेम कसौटी में कस के रे मनुवा।
होई जा तू भव से पार,
जीवन ज्योति जगाय ले मनुआ। प्रभु
छल और कपट के बुझाय के दीपकवा
प्रभु का दिया तू जलाय।
सतगुरु चरण पकड़ ले पुजरिया,
आसन से मत डोल।

रहना नही है इस दुनिया में,
यह है मुसाफिर खाना।
झूठहि लेना झूठहि देना,
झूठहि आना जाना।
बिगड़ी जिन्दगनियाँ बनाय ले मनुआ। प्रभु
झूठी देखी जगत की ये रितियः।
झूठा सभी ब्योहार,
एक भरोसा है प्रभु के देहरिया में।
जीवन बीते हमार,
अर्पण करदे तन मन धन सब।
रहना है दिन दो चार,
अपने गुरु जी का कर ले भरोसवा।
होई जइहे बेड़ा पार,
अपने प्रीतम का भरि के रिझाय ले मनुवा।

[७७]

करले श्रृंगार चतुर अलबेली।
साजन के घर जाना होगा॥ कर ले॥
नहा ले धो ले शीश गुथाँ ले,
फिर वहाँ से नही आना होगा।
माटी ओढ़न, माटी बिछावन,
माटी मे मिल जाना होगा॥

[७८]

जोड़ जोड़ भर लिए खजाने, अजहूं तृष्णा अड़ी रही।
पड़े रहे सब रंगले बंगले, खाली बारादरी रही।
एक ब्राह्मण की सुनो कहानी—

पूजा करने जाता था।
नहाय धोय के नदी किनारे
आसन खूब जमाता था।
काल बली का लगा तमाचा
हाथ मे माला धरी रही ।। पड़े रहे...
एक नारि ऊँचे से महल पे
चली शृंगार बनाने को।
भरी सलाई सुरमे वाली
आँख में सुरमा पाने को।
काल गुलेल लगी पीछे से
सुरमे दानी पडी रही ।। पड़े रहे...
एक बाबू जी सैर करन को
गाड़ी पर असवार हुए।
गाडी अभी चलने नहि पाई
बाबू जी ठन्डे धार हुए।
खड़ा ड्राइवर हाँका मारे
सड़क पर टम-टम खडी रहीं ।। पड़े रहे...
पहन पोशाक बाँध कर चीरा
हट्टी ऊपर सेठ गया
जाते ही एक चक्कर आया
पाँव पसार कर लेट गया
कूच कर गया लिखने वाला
कलम कान में टँगी रही...

[७९]

हरि बिन कौन सहायक मेरो।
प्रभु बिन कौन हरे दुख मेरो।
मातु पिता और लोग कुटुम्ब सब है परिवार घनेरे।
अन्त समय कोई साथ न जइहै, कोटिन यत्तन करो रे।
धन दौलत ओर माल खजाना, कोठी महल खडे रे।
काल बली ने जब आ घेरा, कुछ नही साथ चले रे।
सतगुरु जी की शरण पड़ी हूँ, बन्धन काटो मेरे।
भक्ति ज्ञान का दान करो प्रभु, पाप कटै सब मेरे।
दया दृष्टि सतगुरुजी ने देखा, तब चित शांति भयो रे।
मैं मूरख हूँ निपट गवांरी, हरि जी के शरण पडी रे।
द्रोपदी की लाज बचाई, कोटिन पीर हरो रे।
दुःशासन को गर्व नसायो, नेक कृपा अब करो रे।

[८०]

घेरले वाटे तोहि का माया जैसे जाला मकड़ी।
बिटिया बेटवा और मेहरारु,
कोउ काम न अइहैं।
सोने का कड़वा नोट का बण्डल,
इहाँ पड़ा रहि जइहै।
जाई साथ न दमड़ी जाला मकड़ी.....
प्राण निकल जब जाई तोहरा,
फिर न देर लगइहें।
दुशमन ऐसा बाध के तोहि का,
नदिया पार लै जइहै।

फुकिहै धरि के लकडी जैसे जाला मकड़ी—
नंगा करि के तोहिका भेजि हैं,
सब धन लइहें लूट,
मरिहैं बांस तान कर ऐसा,
जाइ खुपडिया फूट।
जैसे फूटे बाटे ककडी जाला मकड़ी—
उई मालिक का कर ले भजनवा,
होय जइहैं कल्याण।
वरना एक दिन तोहरे मूड़े,
काल बिराजे आय।
धरि के खूब रगड़ि है जाला मकड़ी—
ये दुनिया है, धोखे की टट्टी
मुँह देखे का नाता।
हरि मिलन का जतन करो कुछ,
कवि चंचल समझाता।
वरना रहियो दो घड़ी तुम जाला मकड़ी—

[८१]

मन राम सुमिर पछितायेगा।
पापी जियरा लोभ करत है,
आज काल उठि जायेगा। मन राम
लालच लागे जनम गॅवायो,
माया भरम लुभायेगा। मन राम—
धन यौवन का गर्व न कीजो,
कागज सा गल जायगा। मन राम—

सुमिरन भजन दया नहिं कीन्हीं,
ता मुख चाटा खायेगा। मन राम ---
धर्मराज जब लेखा मागे,
क्या मुख लेके जायेगा। मन राम -
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
संग किसे ले जायेगा। मन राम---

[८२]

मन फूला फूला फिरे जगत में कैसा नाता रे। टेक ॥
माता कहै यह पुत्र है मेरा, बहन कहे बीरा मेरा।
भाई कहे यह भुजा हमारी, नारी कहे नर मेरा ॥
पेट पकड़ कर माता रोवै, बाँह पकड़ कर भाई।
लपटि झपटि के तिरिया रोवे, हंस अकेला जाई ॥
जब लगि जीवे माता रोवे, बहन रोवे दस मासा।
तेरह दिन तक तिरिया रोवे, फेर करै घर बासा ॥
चार गजी चर गजी मंगाया, चढा काठ की घोडी।
चारौ कोने आग लगाई, फूक दियो जैसे होरी ॥
हाड़ जले जैसे लाकड़ी, केश जले जैसे घासा।

[८३]

जरि जाय ऐसी जिभना राम बिना।
मन्दिर सूना पुरिया बिना रे,
पुरिया सूनी एक फूल बिना।
जीवन सूना भक्ति बिना रे,
भक्ति सूनी एक ज्ञान बिना।
ज्ञान सूना प्रेम बिना रे,

प्रेम सूना सत्य बिना।
कहें कबीर सुनो भई साधो,
मन न तरे गुरू ज्ञान बिना।

[८४]

रे मन ये दो दिन का मेला रहेगा, कायम न जग का झमेला रहेगा॥
किस काम का ऊँचा जो महल तू बनायेगा,
किस काम का लाखों का जो तोड़ा कमायेगा।
रथ हाथियों का झुण्ड भी किस काम आयेगा,
तू जैसा यहाँ आया था वैसा ही जायगा।
तेरे सफर मे सवारी के खातिर, कन्धो पै ठटरी का ठेला रहेगा॥
कहता है ये दौलत कभी आयेगी तेरे काम,
पर यह तो बता धन हुआ किसका भला गुलाम।
समझा गये उपदेश हरिशचन्द्र कृष्ण राम,
दौलत तो नही रहती है रहता है सिर्फ नाम।
छूटेगी सम्पति यही की यही पर, तेरी कमर में न धेला रहेगा॥
साथी है मित्र गंगा के जल बिन्दु पान तक,
अर्धांगिनी बढेगी तो केवल मसान तक।
परिवार के सब लोग चलेगे तो केवल मसान तक,
बेटा भी हक निवाहेगा अग्नि दान तक।
इससे तो आगे भजन ही है साथी, हरि के भजन बिन अकेला रहेगा॥
रे मन ये दो दिन का मेला रहेगा॥

[८५]

में तो रमता जोगी, राम मेरा क्या दुनिया से काम।
हाड़ माँस की बनी पुतलिया ऊपर जड़िया चाम।

देख देख सब लोग रिझाने मेरो मन आराम।
माल खजाना बाग बगीचे सुन्दर महल मुकाम।
मै तो रमता जोगी····
माता पिता अरु मीत पियारे, भाई बन्धु सुत वाम।
स्वारथ का सब खेल बना है, नही इसमें आराम।
दिन दिन पल पल छिन छिन काया छीजत जाय तमाम।
ब्रह्मानन्द भजन कर प्रभु का, मै पाऊँ विश्राम।
मैं तो रमता जोगी···

[८६]

राणा जी मैं न रहूँगी तोरे हटकी,
साधु-संग मोहि प्यारा लागे, लाज गई घूघट की।
पीहर मेडता छोडा अपना, सुरत निरत दोऊ चटकी।
सतगुरु मुकर दिखाया घटका, नाचूँगी दै दै चुटकी।
हार सिगार सभी लो अपना, चूडी कर की पटकी।
मेरा सुहाग अब मोकू दरसा, और न जाने घट की।
महल किला राणा मोहि न चाहिये, सारी रेशम पटकी।
हुई दिवानी मीरा डोले, केस लटा सब छिटकी।

[८७]

घरनी अब न करब रे भाई मोहे राम नाम सुधि आई।
जग चकिया बहु पीस अघाई, कबहू अन्त न पाई।।
अब पीसत नही बने प्रभु जी, कहाँ लगि जान गँवाइ।
जीवत-मरत दुसह-दु.ख ढोवत, तबहु पार न पाई।।
ताही से जिय जान भजू प्रभु, छाँड़ कपट चतुराई।
अब कोऊ जनि बोले जग माहीं, बहु दिन धोखा खाई।।
कृष्ण प्रिया अनुराग पगी प्रभु, तन मन सुधि बिसराई।

[८८]

रहना नही इस नगरी में ।
सुत दारा धन कोई नहीं अपनो काहे परा है झगरी में ।।
काहे को महल दुमहल बनावत, जैहैं एक घरी मे ।।
इस दुनियाँ बिच अरझ अरझ तू काहे मरत उगरी में ।
जरि जरि मरत दुसह दुःख ढोवत, आग लगी नगरी मे ।।
यह जिय जानि चलनि की ठानो, काहे परा रगरी मे ।
कृष्ण प्रिया घर की सुधि लेहू, बांधो नही सकरी मे ।।

[८९]

मोरी रंगी चुनरिया धोवे धोबिया ।
जनम जनम के दाग चुनर में,
सतसग जल से छुड़ावे धोबिया ।
सत गुरु ज्ञान मिले फलचारी,
शब्द के कलफ चढ़ावे धोबिया ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो,
गुरु के चरण चित्त लाय धोबिया ।

[९०]

मै न लड़ी मोरे राजा चले गये,
एक मंदिर के दस दरवाजे,
न जाने कौनी कैइति से निकर गये ।
चार सखी मोरे पास खड़ी थी,
इन से तुम पूछो मै कछुना कही थी ।
लोग कुटुम्ब परिवार भरे है,

ओढ़े चदरिया अकेले पड़ी थी।
चन्द्र सखी भज बाल कृष्ण छबि,
ऐसी ब्याही से क्वारी भली थी।

[९१]

करले फकिरवा से यारी।
सदा न रहिये जवानी ॥
यह पार गगा वह पार जमुना।
बीच में धुनी रमाई रमाई ॥ सदा ॥
पक्की सडक से आना रे जाना।
लै लेव नाम निशानी निशानी ॥ सदा ॥
इस नगरी में पाँच ठग लागत।
न रहियो मनमानी मनमानी ॥ सदा ॥
नहि अरझो यही जग प्रपच में।
एक दिन सब ही नसानी नसानी ॥ सदा॥
कृष्ण प्रिया हिय भरि सुख लेवहु।
बीत जइहै जिन्दगानी जिन्दगानी ॥ सदा ॥

[९२]

नर तुम काहे को माया जोरी ॥
कौड़ी कौड़ी माया जोरी, कीने लक्ष करोरी।
जब खर्चन की बारी आई, रहि गये हाथ सकोरी।
हाथी लाए घोड़ा लाए, लाए सेन बटोरी।
अन्त समय कछु काम न आये, चढे काठ की घोरी।
जाय उतारे गग घाट मे, कपड़ा छीन्हा छोरी।
भ्राता दोऊ विमुख हुइ बैठे, फूँक दीनों जैसे होरी।
देगे दूत दीन दुख भारी, हाथ पैर सब तोरी।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, डारि नरक मा बोरी ॥

[९३]

नर रैन बीत गई जाग जाग।
उठ हरि के भजन में लाग लाग ।।
यह संसार सराय चलाचल।
मन की ममता त्याग त्याग ।।
विषया रस मृगतृष्णा पानी।
क्यों भटकावे भाग भाग ।।
यह सुन्दर फल विष रस भरिया।
देख भूल मत बाग बाग ।।
ब्रह्मानंद करो निशिवासर।
हरि चरनन मे राग राग ।।

ज्ञान

[९४]

तेरी हीरा ऐसी श्वासा, बातों में बीती जाय,
रे मन राम कृष्ण बोल ॥

गंगा यमुना खूब नहाया,
गया न दिल का मैल।
घर धन्धों में लगा हुआ है,
ज्यों कोल्हू का बैल।
तेरे जीवन की आशा बातों में,
बीती जाय रे मन राम कृष्ण……

किया न पौरुष आकर जग में,
दिया न कुछ भी दान।
मेरी तेरी करता करता निकल गया जब प्राण।
जैसे पानी बीच वताशा बातो में,
बीती जाय रे मन राम कृष्ण……

पाप गठरिया सर पर लादे,
रहा भटकता रोज।
प्रेम सहित राधा माधव की,
किया न कुछ भी खोज।
झूठा करता रहा तमाशा बातों मे,
बीती जाय रे मन राम कृष्ण……

नस नस में प्रति रोम रोम में,
राम रमा है जान ।
प्रकृति विन्दु के कण कण में भी,
उसको तू पहचान ।
उससे मिलने की अभिलाषा,
बातो में बीती जाय,
रे मन राम कृष्ण ॥.........

[९५]

जोवन ज्योति जगाओ पुजारी, जीवन ज्योति जगाओ ।
बाहर का अवलोकन छोड़ो,
भीतर दृष्टि जगाओ । पुजारी ॥
हृदय भवन है ठाकुर-द्वारा,
वास जहाँ करता है प्यार। ॥
नित्य सबेरे आरती लेकर,
प्रभू के सम्मुख जाओ । पुजारी ॥
सच्चाई की उठा बुहारी,
बाहर कर दो गन्दगी सारी ॥
आसुओं की गंगा यमुना में,
प्यारे को नहलाओ । पुजारी ।
अपने प्राणों के तारों पर,
श्वास-श्वास की झनकारों पर ॥
हरि-हरि का नित कर संकीर्तन,
चारों ओर जगाओ । पुजारी ॥

राधे श्याम यही पूजन है,
यही भजन सुमिरन बन्दन है ॥
नारायण जैसे भी रीझे,
वैसे उन्हें रिझाओ। पुजारी।

[९६]

बैठा प्रभु आकाश में लेकर कलम दवात,
कागज पर दिन रात वो लिखता सबकी बात।
मेरे मालिक की दूकान पर है सबही का खाता,
जितना जिसके भाग्य में होता वो उतना ही पाता,
कलयुग वालो सही पते की बात मैं एक बताता,
क्या साधु क्या संत गृहस्थी क्या राजा क्या रानी,
प्रभु की पुस्तक में लिखी है सबकी राम कहानी,
बड़ा कड़ा कानून प्रभु का, बड़ी कड़ी मर्यादा,
किसी को कौड़ी कम न देता और न दमड़ी ज्यादा,
इसीलिए वह इस दुनियाँ का सेठ बड़ा कहलाता,
करता है इन्साफ सभी का हरि आसन पर डटके,
उसका फैसला कभी न पल्टे लाख कोई सर पटके,
समझदार तो चुप रहता है मूरख शोर मचाता,
उजली करनी करो रे भइया, कर्म न करियो काला
लाख आँख से देख रहा है मोहन-मुरली वाला,
पुण्य का बेड़ा पार करे वो पाप की नाव डुवाता,
अच्छी खेती करो चतुर जन समय गुजरता जाता,
मेरे मालिक की ....

[९७]

ज्ञान नैन ले खोल पुजारी।

ब्रह्म भाव में पगले खोजा,
देव गुणों से भूषित होजा
त्रिगुणातीत पड़ा क्यों सोता,
जगत ढोल का पोल ॥
पुजारी ज्ञान—

तेज क्षमा धृति शौच अमित गुण
अपना ले बानी केशव सुन
दम्भ दर्प अभिमान त्याग दे
आत्म कृष्ण मुख बोल
पुजारी ज्ञान...

[९८]

घूँघट का पट खोल रे,
तोहे राम मिलेंगे।

घट घट में तोरा साईं बसत है,
कटुक वचन मत बोल रे। तोहे राम०
धन यौवन का गर्व न करियो,
इनका दो दिन मोल रे। तोहे राम
मन मंदिर मे ज्योति जगा लो,
आसन से मत डोल रे। तोहे राम०
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
बाजत अनहद ढोल रे। तोहे राम०

[९९]

सम्हारो सखी सुरति फूटै न गगरी।
कोरा घड़ा नई पनिहारिन, शील सन्तोष की लागी रसरी।
एक हाथ करवा दूसर हाथ रसरी, त्रिकुटी महल की डगर पकरी
निशदिन ध्यान घड़ा पर राखो, पिया मिलन की यही जुगती
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, पिया तोर बसत अमरपुर नगरी

[१००]

दीवाने मन भजन बिना दुख पइहौ।
पहलो जन्म भूत को पइयो,
साात जनम पछितइहौ।
कीरा परि के पानी पीजो,
प्यासन ही मरि जइहौ।
दूजा जन्म सुआ को पइयो,
बाग बसेरा लैहो।
टूटे पंख बाज मडरावे,
अधवर प्राण गवइहो।
बाजीगर को बन्दर ह्वैहो,
लकड़ी नाच नचैहो।
ऊच नीच पै हाथ पसरिहौ,
माँगे भीख न पइहौ।
तेली के घर बरधा ह्वैहो,
आँखिन ढाँप ढपैहो।
कोस पचास घरहिं माँ चलिहौ,

बाहर होन न पइहो।
पँचवा जन्म ऊँट को पइहौ,
बिनु तुम बोझ लदैहो।
बैठे तो तुम उठन न पइयो,
घसिट घसिट मर जैहौ।

[१०१]

लगा के आँखों में ज्ञान अंजन
जहान देखा तो कुछ नही है।
महल अटारी भवन और मन्दिर,
मकान देखा तो कुछ नही है॥
ये सूर्य चन्दा गगन सितारे,
खड़े है सिर पर कजा के मारे।
मिटेंगे एक दिन अवश्य निश्चय
गुमान देखा सो कुछ नही है॥
ये लम्बी नदियाँ पहाड़ ऊँचे,
खड़े हैं सिर को उठा २ कर।
गिरेंगे भूमि में चूर होकर,
जो शान देखी तो कुछ नही है।
दुकान दौलत जमीन जोरू,
कुटुम कबीला सभी है फानी।
मुकुन्द तुमसा तू ही है मालिक,
महान देखा तो कुछ नहीं है।

[१०२]

गुरु के भजन मे हो जा रे दिवाना,
सपनो की दुनियाँ का क्या रे ठिकाना ।
मतलब से दुनियाँ तुम्हें अपनायेगी,
अन्त समय कोई काम न आयेगी ।
कोई न अपना कोई न बेगाना । सपनो ··
झूठी है दुनियां झूठे सारे मीत रे,
झूठी है प्रीति यहां झूठी सारी रीत रे ।
देखो मेरे मनुवा चाल में न आना । सपनो···
संग न जाये तेरे कौडी छदाम रे,
चिन्ता में खोया तूने जीवन तमाम रे ।
पडा रह जाये यहाँ माल और खजाना । अपनो ··
अखंड समाधि में हो जा निष्काम रे,
मानुष का जीवन यही निज धाम रे ।
ब्रम्हानन्द कहै अपने आप में समाना । सपनो···
न तो कही आना न तो कही जाना । सपनो ··

[१०३]

तेरा माया में बिगड़ा ध्यान क्या ।
जा कचहरी में देगा बयान क्या ।।
आयु विषयों में पड़ कर के खोई यहाँ ।
पूछे यमराज बतलाओगे क्या वहाँ ।
पाके नरतन किया धर्म दान क्या ।। जा ।।

पाप की गठरीं लदी है तेरें शीश पर।
राह भी अति कठिन दूर का है सफर॥
दुख मिले तब करेगा नादान क्या॥ जा॥

लख चौरासी तू योनियाँ भोग कर।
पा लिया मुक्ति साधन ये संसार तर॥
फिर मिलेगी यह नरतन की शान क्या॥ जा॥

हरि भजन कर सुकर्मो मै लग जा अभी।
संत सगत औ गुरु पद में पग जा अभी।
जरा मन में समझ विज्ञान क्या॥ जा॥

[१०४]

कौन ठगवा नगर मोर लूटल हो,
चन्दन काठ का बनल खटोलना, ता पर दुलहिन सूतल हो॥
आये यमराज पलंग चढ़ बैठे, मोरे अखियन असुवन टूटल हो॥
चार जने मिल आग लगाये, इहि चहुओर उठल धूधुर हो॥
कहत कबीर सुनो भई साधू, मोरा जग से नाता टूटल हो॥

[१०५]

अन्धा धुन्ध अंधियारा,
कोई जानेगा जानन हारा।
या घट भीतर बन अरु बस्ती
याही में झाड़ पहारा।
या घट भीतर सोना चाँदी
याही में लगन सींचन हारा।

या घट भीतर सोना चाँदी
याही में लागी विचारा।
या घट भीतर हीरा मोती
याही में परखन हारा।
या घट भीतर सात समुन्दर
याही में नदिया नारा।
या घट भीतर सूरज चन्दा
याही में लख तारा।
या घट भीतर बिजली चमके
याही में होय उजियारा।

[१०६]

रंगवाये ले चुनरिया चलती दफे
रेशम औ मलमल की घर में धरे है
पातरि सी चुनरिया ॥ चलती ॥
हाथी औ घोड़े की छोड़ी सवारी
बाँसों की ठठरिया ॥ चलती ॥
महले भी छोड़े दुमहले भी छोड़े
जंगल में झोपड़िया ॥ चलती ॥
मात पिता औ कुटुम्ब कबीला
जरा रोवें सँवलिया ॥ चलती ॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर
चिता में अगनिया ॥ चलती ॥

[१०७]

जन्म सब धोखे में बीत गयो रे।
बारह वर्ष लरिकाई में बीती,

बीस में काम गयो।
तीस वर्ष माया के पीछे,
देश विदेश गयो।
चालिस अन्त राजमद बाढयो,
उठत लोभ नित नयो।
सुत दारा इन्ही के कारण,
निशिदिन सोच रह्यो।
सूखी त्वचा कमर भई टेड़ी,
यह सब ठाठ ठयो।

[१०८]

तू ने खूब रचा भगवान खिलौना माटी का
नैन दिए दरशन करने को कान दिए सुन ज्ञान ॥
वचन दिए हरि गुण गाने को हाथ दिए कर दान ॥
चरण दिए तीरथ जाने को, कर गंगा स्नान ॥
मेरी प्रीति बढे प्रभु तुमसे, दिन-दिन बाढ़े ज्ञान ॥
मनसा नाथ मनोरथ आशा, तुम प्रभु कृपानिधान ॥

[१०९]

तू न तजति सब तोहे तजेगें।
जाहित जग जंजाल उठावत, तो कह छाड़ि भजेगें।
जा कह करत पियार प्राण संग, जो तेहि प्राण कहेंगे ॥
सोऊ तोकह मरेऊ जानके, देखत रूप डरेगे।
देह गेह अरु नेह नाहते, नातो नहिं निबहेगे ॥

जा बस ह्वै निज जन्म गवावत, कोऊ न संग रहेंगे ।
कोऊ सुख बिहाय करि अपनो, नहिं कोऊ संग करेगें ।।
कृष्ण प्रिया बिन कृष्ण भजन के, भव भय कोऊ न हटेगे ।

[११०]

मन लागो यार फकीरी में।
जो सुख पायो नाम भजन में, सो सुख नाहीं अमीरी में ।
भला बुरा सब की सुनि लीजै, करि गुजरान गरीबी में ।।
प्रेम नगर में रहनि हमारी, भलि बनि आई सबूरी में ।
हाथ कमण्डल बगल में झोला, चारो दिशा जगीरी में ।।
आखिर यह तन खाक मिलेगा, कहाँ फिरत मगरूरी मे ।
कहत कबीर सुनो भई साधो, साहिब मिले सबूरी में ।। मन

[१११]

राही पथ तू भूल न जाना
पथ में सोच समझ कर चलना
कहीं भटक न जाना ।। राही ।।
पथ में काँटो की बेलायें
फूल समझ न जाना
पथ में बहुतेरी खॉई है
कही लुढ़क न जाना
सतगुरु कृपा वही पहुँचेगा
जो गुरु में हुआ दिवाना

[११२]

मना मौज बडी हरी नाम दे अन्दर ।।
जेहड़ा कुल दुनियाँ दा वाली ए,
शाहाँ दा शाह सवाली ए,
चन्दा तारे बसन ओदी शान दे अन्दर ।।
मना मौज......

तेरीयाँ सीफताँ की समार दसाँ
तेरा केहड-केहड़ा गुण उपकार दसाँ
इतनी ताकत न मेरी जबाँन दे अन्दर ।।
मन.....

पुछ तुलसी सूर कबीर को लो,
मीरा सहजो तुलसी फकीर को लो,
कितनी मस्ती है राम दे नाम अन्दर ।।
हो जा मस्त मतंग तू भी नाम सुमर
हरि मीरा सुमर गुरु नाम सुमर
जेड़ा रूप बसे हरि नाम दे अन्दर
मना मौज बड़ी हरी नाम दे अन्दर

हरि कीर्तन

[११३]

राधे कृष्ण बोल रे मन राधे कृष्ण बोल रे
तन चोंगी मन जीव हे तोता
पकड़े दुख के खाए गोता
मै मेरो की गाँठ बँधी है, खोल सके तो खोल रे
जगत हाट में आकर प्यारे
गुरू दलाल से मिलकर प्यारे
साधन सौदा देह तराजू तौल सके तो तौल रे
पंच विषय से राग द्वेष तज
प्रेम सहित निष्काम हरि भज
अंह भाव को भूल के रम राधे कृष्ण बोल रे
संत वाक्य को निश्चय कर ले
सर्व ब्रह्म है सुखमय रख ले
निजानन्द रस जी भर पी कर मस्त हुआ फिर डोल रे

[११४]

हरि बोल मेरी रसना घड़ी २ ।।
ब्यर्थ बिताती है क्यों जीवन,
मुख मन्दिर में पड़ी पड़ी ।
नित्य निकाल गोविन्द नाम की,
श्वास श्वास से लड़ी लड़ी ।

जाग उठे तेरी ध्वनि सुनकर,
इस काया की कड़ी कड़ी।
बरसा दे प्रभु नाम सुधारस,
बिन्दु बिन्दु हर घड़ी घड़ी ॥

[११५]

शिव शंकर का मंत्र यही,
ओ नमः शिवाय ओं नमः शिवाय ॥
नित प्रति बहनों जपा करो,
ओं नमः शिवाय ओ नमः शिवाय ॥
जटन में बहती सुरसरि धारा,
कामदेव को पल में जारा।
अंगन भस्म रमाय लिया,
ओ नम. शिवाय ओं नमः शिवाय ॥
मस्तक पर चन्द्रमा विराजे,
गल मुण्डन की माला छाजे।
मृग चर्म कमण्डल धार लिया,
ओ नमः शिवाय ओं नमः शिवाय ॥
नन्दी गण पर करत सवारी,
भूत प्रेत करते रखवारी।
विषधर नाग फुँकार रहे,
ओं नमः शिवाय ओं नमः शिवाय ॥
आसन सुन्दर है बाघम्बर,
नाम धराया सुखद दिगम्बर।

डिम डिम डमरू बाज रहा,
ओं नमः शिवाय ओं नम. शिवाय ।।
भक्त विनय करती कर जोरी,
आशा पूर्ण करो प्रभु मोरी।
भक्तों का दुख मिटा दिया,
ओं नमः शिवाय ओं नमः शिवाय ।।

[११६]

राम कहते रहो काम करते रहो,
राम ही का सदा ध्यान धरते रहो।
यह जगत राम के काम का धाम है,
राम के दास बन कर बिचरते रहो।
जिन्दगी राम के काम ही के लिए,
रात-दिन उन पर बलिहार करते रहो।
राम की प्रेरणा से करो कर्म सब,
कामना वासना दूर करते रहो।
उनकी थाती उन्हें शौक से सौंप दो,
नित्य दुख द्वन्द से भी उबरते रहो।
जड़ जगत में नई चेतना आन कर,
राम का राज विस्तार करते रहो।।
शान्ति आनन्द, भक्तों सहज ही मिले,
राम को प्रेम ज्योति को भरते रहो।।
एक दिन स्वर्ग संसार बन जाएगा,
भक्ति से विश्व कल्याण करते रहो।।

[११७]

हरी हरी बोल, प्राण पपीहे हरि हरी बोल ।

क्षण भंगुर जीवन है सपना,
यहाँ नही है कोई अपना,
इक दिन नहि जैहै कछु बोल, प्राण पपीहे हरि हरी बोल ।

यह मन माया रहत भुलाना,
इत उत भटकत जन्म नसाना,
हो थिर बैठ, बहुत मत बोल, प्राण पपीहे हरि हरी बोल ।

तजि अभिमान कपट नाना छल,
जीवन के प्रति क्षण प्रति पल,
स्वांस स्वांस मे हरि हरि बोल, प्राण पपीहे हरि हरी बोल ।

जनम जनम की पीर नसानी,
कृष्ण प्रिया भई प्रेम दिवानी,
पायो राम नाम अनमोल, प्राण पपीहे हरि हरी बोल ।

कभी ज्ञान अरु भक्ति को पथ,
नहि सूझत यह संतन को मत,
राम का नाम बडा अनमोल, प्राण पपीहे हरि हरी बोल ।

[११८]

गोविन्द हरी गोपाल हरी,
जय जय प्रभु दीनदयाल हरी ।

हम जान गये पहचान गये,
छबि आई नजर तो मान गये ।
हमारा भी सुनो अब हाल हरी । गोविन्द—

यह जीवन है कुछ दिन का है,
प्रभु ध्यान मे सुख ही धन सुख है,
पतित मुक्ति दातार हमारे राधेश्याम ।

[१२०]

है आँख वो जो राम का दर्शन किया करे ।
है शीश वो चरणो पे जो बन्दन किया करे ।
बेकार मुख है वो जो रहे व्यर्थ वाद मे ।
मुख वह है जो हरिनाम का सुमिरन किया करे ।
हीरों के कड़ो से नही शोभा है हाथ की ।
है हाथ वह जो नाम का पूजन किया करे ।
कविवर वही है श्याम के सुन्दर चरित्र का ।
रसना के जो रस विन्दु से वर्णन किया करे ।

[१२१]

तेरा राम जी करेंगे बेड़ा पार
उदासी मन काहे को करे—
नैया तेरी राम हवाले—राम हवाले
लहर-लहर हरि जाय सम्भाले-हरि–
हरि आप ही उठावे तेरा भार ...
उदासी मन काहे को करे । तेरा राम—
काबू में मझधार उसी के—मझधार—
हाथो में पतवार उसी के—पतवार—
तेरी हार भी नही है तेरी हार——
तू निर्दोष तुझे क्या डर है
पग-पग पर साथी तेरा राम है
जरा भावना से करिये पुकार ———

[१२२]

नरतन हम को मिला हरि गुण गाने के लिये ।
जिन्दगी के खेल है मिट जाने के लिये ॥
चौरासी में घूम-घूम कर पाया है अनमोल रतन ।
फिर भी मूरख हुआ दीवाना ईश्वर नहि किया भजन ।
पॉच तत्व की देह बनी मिट जाने के लिये ।
आठ मास नो गर्भ मे रहकर प्रभु से कीन्हा कौल करार ।
भूलूँगा नहि पल भर तुमको, चाहे मुसीबत सहूँ हजार ॥
पॉच तत्व की देह बनी, मिट जाने के लिये ।
लोक कुटुम्ब और दुनियादारी, झूठा है संसार ।
झूठी तेरी काया माया, झूठा जग का प्यार ॥
काम क्रोध खट राग लगे बहकाने के लिये ।
कानों से सुन कथा भागवत हाथो से कर दान ॥
पैरो से जा सन्त आश्रम कर गंगा स्नान ।
गुरू शरण जा पाप भस्म करवाने के लिये ॥
दया धर्म धीरज न त्यागो, राखो नैन की रीति ।
क्षमा और सन्तोष शीलता, इनसे लागी हो प्रीति ॥
सज्जन के सग बैठ चित्त बहलाने के लिये ।
नर तन हमको मिला, हरि गुण गाने के लिये ॥

[१२३]

तेरा नाम लिया दुख दूर किया मेरे दाता
बेड़ा पार लगादो विधाता ॥
तेरी वशी की लौ पर मै गाऊँ
अपना जीवन सफल बनाऊँ

तेरी बंशी प्यारी, मन को हरने वाली मेरे दाता
बेड़ा पार लगा दो विधाता ।।
मन मदिर ज्योति जला दो,
प्रेम रस का प्याला पिला दो,
तेरी लीला न्यारी मन को हरने वाली मेरे दाता,
बेड़ा पार लगादो विधाता ।।
दासी चरणों में तेरे ये आई,
अपने जीवन के दुखड़े भी लाई,
दुख दूर करो मेरी विपदा हरो मेरे दाता
बेड़ा पार लगादो विधाता ।।

[१२४]

जिसके हृदय श्रीराम बसे,
तिन्ह और का नाम लियो न लियो ।
जिनके द्वारे श्री गंगा बहे,
तिन्ह कूप का नीर पियो न पियो ।
जिन्ह मात पिता की सेवा करी,
तिन्ह तीरथ बर्त कियो न कियो ।
जिन सेवा टहल साधुन की करी,
तिन्ह योग औ ध्यान कियो न कियो ।
तुलसीदास बिचारि कहे,
कपटी अस मित्र कियो न कियो ।

[१२५]

राम नाम रस पीजे रे मनुवा ।
तजि कुसंग सतसंग बैठ नित, हरि चरचा सुन लीजे
काम क्रोध मद लोभ मोह को, हटा चित्त से दीजे ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर ताहि के रंग में भीजे ।

[१२६]

तेरे नाम का माला फेरूँ ।

तेरा ही गुण गाऊँ प्रभू जी मैं तेरा ही—

तेरे बिना मन मन्दिर सूना, सूनी दुनिया सारी।

विष्णु बिष्णु नाम जपू मैं, कट जाय उमरिया सारी।

तेरे चरनन की माटी लेकर, अपनी माँग भराऊ।

मन में तू अंखियन में तू है, तू मेरे जीवन में।

तेरी ज्योति में ज्योति मिलाकर, तुझमें ही मिल जाऊं।

[१२७]

भजो राधे गोविन्द घनश्याम रे

भजो राधे गोविन्द घनश्याम रे।

दोउ रूप-सुधानिधि लाल लली,

बिहरें नित मंजुल कुज गली।

लखि लाज कोटि शत काम रे।। भजो।।

दोउ रसिक शिरोमणि प्रेम धनी,

जनु रूप सिंगार की जोरी बनी।

रसधार बहायो ब्रजधाम रे।। भजो।।

सनकादिक भेद न पाय सके,

कहि नेति जो वेदहु गाय थके।

तेहि गोपी नचावें विनु दाम रे।। भजो।।

जेहि ध्यान सुरंध्रन ध्यान धरें

जेहि ज्ञानी निरंजन मानि लरै।

तेहि अंजन बनायो ब्रजधाम रे।। भजो।।

दोउ चन्द्र चकोर दोऊ हैं बने,

बिन बैनन नैनन बात भनै।

धनि जोरी भक्त अभिराम रे।। भजो।।

लीला

[१२८]

कान्ह कुँवर की करहु पासनी, कछु दिन घटि षट मास गये
नंद महर यह सुनि पुलकित जिय, हरि अन प्रासन जोग भये
विप्र बुलाई नाम लै बूझ्यौ, रासि सोधि इक सुदिन धरयौ
आछौ दिन सुनि महरि जसोदा, सखिन बोल शुभ गान करयौ
जुवति महरि कौं गारी गावति, और महर कौ नाम लिए
ब्रज-घर-घर आनन्द बढ़यौ, अति प्रेम पुलक न समात हिये
जाकौं नेति-नेति स्रुति गावति, ध्यावत सुर-मुनि ध्यान धरै
सूरदास तिहि कौं ब्रज-बनिता, झकझोरति उर अक भरै ॥

[१२९]

कान्हा कुँवर को कनछेदन है, हाथ सोहारी भेली-गुर की।
विधि विहँसत हरि हँसत हेरी, जसुमति को धुकधुकी की।
रोचन भरि लै देत सीक सो, स्रवन-निकट अति ही चतुर की।
कचन के द्वै दुर मंगाय लिए, कहौं कहा छेदति आतुर की।
लोचन भरि-भरि दोऊ माता, कनछेदन देखत जिय मुरकी।
रोवत देखि जननि अकुलानी, दियो तुरत नौआ को घुरकी।
हँसत नंद, गोपी सब बिहँसी झमकि चली सब भीतर ढुरकी।
सूरदास नंद करत बधाई, अति आनन्द बाल ब्रज-पुर की।

[१३०]

अरी, मेरे लालन की आज वरष गाँठ,
सबै सखि कौ बुलाई मंगल गान करावौ।
चन्दन आगन लिपाई, मुतियन चौक पुराय,
उमग अंगनि आनन्द सौं तूर बजावौ।
मेरे कहे विप्रनि वुलाइ, एक शुभ घरी धराइ,
बागे-चीरे बनाइ, भूषन पहिरावौ।
अछत दूब-दल बंधाइ, लालन की गाव गुराइ,
इहै मोहि लाहौं, नैननि दिखरावौ।

[१३१]

आज दशरथ के आँगन भीर ॥
ये भू भार उतारन कारन प्रगटे श्याम-शरीर।
फूले फिरत अजोध्या वासी, गनत न त्यागत चीर।
परिरंभन हँसि देत परस्पर, आनन्द नैनन नीर।
त्रिदस-नृपति रिषि व्योम विमामनि देखत रह्यो न धीर।
त्रिभुवन नाथ दयालु दरस दे हरी सबनि की पीर।
देत दान राख्यो न भूप कछु, महा बड़े नग हीर।
भए निहाल सूर सब जाचक, जे जाँचे रघुवीर।

[१३२]

मैय्या खेलन कैसे जाऊँ झिखावे दाऊ भइया मोय—
मोते कहत मोल तोय लाये
तोये मइया कब दूध पिलाये
तोकू मइया छाछ पिलाये, दूध पिलावे मोय—मैया

हम गोरो तू तन को कारो
हम भोरो तू कपटी भारो
हम सब के घर दुलहिन आवे, तोकू देय न कोय—
जब मैय्या गायन पर जाऊँ
इनको सबरी कथा सुनाॅऊँ
हउआ से डरपावे मोकू, धीरज कैसे होय—मय्या
सब ग्वालन में मेई बारो
कपटी ते तू कहत बिचारो
गारी दैके मोय बुलावे, लाज शरम गई खोय —मैय्या
डर लागे मोये अति भारी
बन न जाऊँ कल महतारी
छोड़ जाय सब संग के मोरे, मैं ठाढ़ो रह रोय—मैय्या
अब मैया चुप चाप रहूगो
बाबा से सब जाय कहूंगो
तू हू मोकू मारन सीखी, खबरि परे अब तोय
सुन लाला की मीठी बानी
मन में सुख पावे नन्दरानी
सब भक्तन तेरे दर पे ठाढो हाथ जोर रहो दोय
भैय्या खेलन कैसे जाऊँ खिझावे दाऊ भइया मोय

[१३३]

इकली घेरी बन में आय श्याम तैने कैसी ठानी रे।
श्याम मोहि बृन्दाबन जानो, लौट कर बरसाने आनो॥
मेरी कर जोरे की मानो।
जो कहूं होय अबेर लड़े घर नन्द जिठानी रे॥ इकलो॥

दान दधि को तू दे जा मोय, जभी ग्वालिन जान दऊँ मैं तोय
नहीं तकरार बहुत सी होय।
जो करती इन्कार हौय तेरी ऐचातानी रे ।। इकली ।।
दान हमें कबहुं नहिं दियो रोक मेरा मारग क्यों लियो।
बहुत सा ऊधम है कियो।
आज तलक या बृज में कोई न भयो दान रे। इकली।
ग्वालिनी बाते रही बनाय, ग्वाल बालन कूँ लऊँ बुलाय ।।
तेरो सब दधि माखन लूं लुटवाय।
इठलावै हर बारबार तोय छाय रहा ज्वानी रे। इकली।
कंस राजा पर करूँ पुकार, मुश्क बंधवाय दिखाऊँ मार ।।
तेरी ठकुराई देय निकार।
जुलम करै नहि डरै तकै तू नार बिरानी रे। इकली।
कस कहा खसम लगै तेरो, वो तनहा कहा करै मेरो ।।
काऊ दिन मार करूँ कैरो।
करूं कंस निरवंश मेट दऊं नाम निशानी रे। इकली।
आय गये इतने में सब ग्वाल, पड़े आँखन मे डोरा लाल ।।
घूम के चले अदा की चाल।
लुट गई ग्वालन मारग में घर गई खिसयानी रे। इकली।
करी लीला जो श्याम श्यामा, कौन बरनन कर सकै तमाम ।।
करूं बलिहार धन्य ब्रजधाम।
कहते घासी राम नन्द को है सैलानी रे। इकली।

[१३४]

ग्वालिनि मत पकड़ो, मोरी बहियाँ,
मेरी दूखे नरम कलैया ।।

मै तेरो माखन नहि खायो,
अपने घर के धोखे आयो ॥
मटकी तें नही हाथ लगायो,
आज छोड़ दे, सौगन्ध मै खाऊँ तेरी लेऊँ बलैयाँ ॥
खोल किवरिया तू गई पानी,
भूल गई क्यो अब पछितानी ।
मोते कर रही ऐंचा तानी,
झूठो नाम लगावे तोरे घर में घुसी बिलैया ॥
आज छोड दै सौगन्ध खाऊँ,
फेर न तेरे घर मै आऊँ ॥
नित तेरी गागर भरवाऊँ,
बेग छोड़ दे देर होय रही, बोल रह्यो बल भइया ॥
तोकू नेक दया नही आवे,
मो सूधे को दोष लगावे ।
घर बुलाय के चोर बतावे,
बाट देखते होय सखा सब दूर निकस गईं गैया ॥

[१३५]

श्याम तेरी मुरली नेक बजाऊँ,
जेहि-जेहि तान भरो मुरली मा,
सोइ-सोइ गाय सुनाऊँ । श्याम तेरी ।
हमरी बिंदिया तुम्ही लगाओ,
मैं सिर मुकुट लगाऊँ,
हमरी चुनरिया तुम ओढ़ो श्याम ।
मै पीताम्बर पाऊँ श्याम तोरी⋯—

हमरे कंगनवाँ तुम पहिरो श्याम।
मैं तुमरे सब पाऊँ श्याम तोरी

तुम मटकी सिर धरो सवरिया
मैं बन ग्वाल लुटाऊँ। श्याम तोरी।

[१३६]

राधा झुलत हिंडोले छगन मगन।
जसुमति सुत ब्रजभान नन्दिनि।
निरखत गोपिन आनन्द मगन। राधा०।

हंसि हंसि रीझि बैठ रह दोऊ।
पुरन मनोरथ अंतर मन। राधा०।

शिव सनकादि शेष अरु शारद।
योगिन के डोले आसन। राधा०।

कुंज कुंज बिच तथेई तथेई थेई।
डोलत चंचल मन्द पवन। राधा०।

भ्रमर गुंज अरु लता मनोहर।
सुन्दर शशि सोहे नील गगन।

[१३७]

बाज रही बंशी और नाच रहे मोहना।
मधुबन में झूल रही राधा हिंडोलना॥
यमुना किनारे चलो गउएँ चराये।
ग्वाल बाल मिल सब रास रचाये॥
भाग जाये गउएँ तो हाँके बलराम ना॥१॥

मधुबन की याद मुझे पल पल सताये ।
मुरली की तान मेरे दिल को लुभाये ॥
देखो 'प्रिय भक्तों' को भूल नहीं जाना ।
मधुबन में झूल रही राधा हिंडोलना ॥

[१३८]

निर्मल यमुना जल करिबे को
प्रभु ने नाथो काली नाग ......
ग्वाल बाल सब सखा बुलाए
नाना भाँतिन खेल मचाए
गेंद में मारयो टोल घुमाए
उछल यमुना मे पहुँची जाय
सखा सुदामा गयो रिसियाय
दोहा—सुदामा रिसियाय के, कही कृष्ण से बात
यमुना में ले जाय के, दीजी गेंद बहाय
छोड़ फेंट सुदामा मेरी रे
घर चल गेंद दिवाय दऊँ तोरी रे
कहे सुदामा यो झुँझलाय
मेरी तो वही गेंद दिलाय
ठाड़ो क्यों बातें रहयो बनाय
दोहा—इतनी सुनकर श्याम ने, नटवर भेष बनाय
ले मइया मैं जात हूं, घर मत कहियो जाय
ठाडे रहियो यमुना तट पर मत जइयो मोहि त्याग
दह में कूदे कृष्ण मुरारी
सोवै नाग सहस्र फन धारी
कहा नागिन ने यों समुझाय

गयो तू बालक कहाँ ते आय
खबर मेरे पति को जो होय जाय

छन्द–आयो कहाँ ते जाय कहाँ, यह भेद मोहि बताइये
कहा नाम औ कहाँ धाम है, को मत तोको जाइये
बोले है बोल कुबोल तोते, नार घर की रिसाइये
डस जायगो जगत पति, यासो बगद घर जाइये

दोहा–जा तू बालक बगद के, मैं समझाऊँ तोय
सूरत तेरी देख के, दाया लागे मोय
जो डस जाएगो नाग तेरे, घर को बुझ जाय चिराग
कृष्ण कहे सुन नागिन प्यारी रे
जगाय नाग अपनो बलधारी रे
कहा धमकी सी रही दिखाय
नाग को क्यों नहीं देत जगाय
रही जा ऊपर तू गरवाय

छन्द–देश पूरब गाँव गोकुल, नाम मम नन्दलाल है
बालक मती मत जान, तेरे नाग को अतिकाल है
बोलें न बोल कुबोल मोते ना लडी घर बाल है
झूले हिंडोला राधिका तेरे नाग डोरी डाल है।

दोहा–डोरी डालूँ नाग की, वृन्दावन के माहि
नाथूँ काली नाग को, अब भगिबे को नाहि
अब भगिबे को नाय भगूँ तो कुल में लग जाय दाग

नागिन ने जब नाग जगायो
भरि फुफकार क्रोध कर धायो
लपेटा तन में दै लीन्हो
कृष्ण को उघरन नहिं दीन्हो

सोच सब ग्वाल बाल कीन्हो

दोहा—ग्वाल बाल रोवत चले, नन्दबाबा के पास
तेरो लाला सावरो, दह में डूबो जाय
कहा सोवे सुख नींद रे बाबा, जाग जाग उठ जाग
नन्द यशोदा रोवन लागे
गोकुल तजि यमुना को भागे

सकल ब्रज छाय रह्यो यमुना तीर
द्रगन ते बहे सबन के नीर
कृष्ण बिन धरे न मन मे धीर

दोहा—यमुना मे कूद पडे ग्वाल रहे समुझाय
उत ते अपनी श्याम ने दीन्ही देह बढ़ाय
खुलन लपटा लगे बदन के, उठन लगे जल भाग
नाग नाथ जल ऊपर आयो जी
कमल पुष्प कसा को लायो जी
दरश ब्रजवासिन को दीन्हो
नृत्य फन-फन ऊपर कीन्हो
देख नागिन दुर्लभ जीनो

दोहा—दुर्लभ जीनो देख के, स्तुति कहे बनाय
प्राण दान येहि दीजिये, कहूँ वचन सिर नाय
क्षमाकरो अपराध पती को, बख्शो मेरो सुहाग
कृष्णचन्द नागिन समझाई
ब्रज को छोड़ अन्त रहो जाई
नाग कहें सुनो गरीब नेवाज
गरुड़ ते बैर पड़ो महाराज
छोड़ ब्रज कहाँ को जावें भाग

दोहा—गरुड़ बैर तोते तज्यो, निर्भय जाओ देश
चरण चिन्ह तेरे धरयो, मिट गए सभी कलेश
घासीराम देव देवन के, मन भयो अधिक उछाग ।

[१३६]

शबरी के सतगुरु पाहुन आये काह रचौ जेवनारी जी।
प्रेम की पूरी, दयारस पूवा, जुगत जलेबी वनाई जी,
शील की सेमी, भाव के भाटा, करम करेला बनाये जी
हित के हींग हरदी हृदय की, नाम का नमक बनाये जी
चित चौका, संतोष बैठका, प्रेम की पत्तल डाली जी,
परसत ललचि लोचनी लौकी, पगधोय सुरत सयानी जी
सतगुरु स्वामी जेवन बैठे, सुर नर मुनि आज्ञाकारी जी,
शबरी के वेर सुदामा के तदुल, रुचि २ भोग लगाये जी,
कृष्णानन्द तो हरिरस भीजे, संतन हित गाली गाई जी ।।

[१४०]

पाती दीजो श्याम सुजानहि
मुख सदेश सुनाई दीजियो
मोहि दीन करि जानहि— ....
श्री हरि जोग रुक्मणि लिखित
विनय सुनौ प्रभु कानहिं ..— . ...
बाँचत बेगि आइयो माधो
धरौ जात मेरे पानिहि ....
समुझत नाहिं दीन दुख कोऊ
हरि मुख जंबुक पानहि .. . .

मीन मरकट कौ देत मूढ़-मीत
मृग मद रज मै सानी ·—··
कब लौ दुख सहौ दरसन बिनु
भई मीन बिनु पानिहि·· ——
सूरदास प्रभु अधर सुधारस
वरषि देहु जिय दानहि — —

[१४१]

रुक्मिनि देवी मन्दिर आई
धूप दीप पूजा सामग्री
अली संग सब लाई ———· ···
रखवारी को बहुत महाभट
दीन्हे रुकम पठाई—— ——— — —
ते सब सावधान भए चहु दिसि
पंछी तहाँ न जाइ———— ——
कँवरी पूजि गोरी विनती करी
बर देउ जादव राई ————
मै पूजा कीन्ही इहि कारन
गोरी सुनि मुस्काई
पाइ प्रसाद अम्बिका मन्दिर
रुक्मिनि बाहर आई —— ·····
सुभट देखि सुन्दरता मोहे
धरनि गिरे मुरझाई
इहि अन्तर जादवपति आए
रुक्मिनि रथ बैठाई —— ——·· ···
सूर प्रभु पहुँचे दल अपने
तब सुभटिन सुधि पाई ······ ·

[१४२]

भगवान तुम्हारे दर्शन को एक नया मुसाफिर आया है।
न लोटा है न थाली है एक हाथ कमडल लाया है
भगवान……
न सर पर उसके टोपी है न पैरों में उसके जूते हैं।
कन्धों पर झोला पडा हुआ अरमान भरादिल लाया है
भगवान——
पूछा जब मैंने नाम उससे तो नाम सुदामा बतलाता है
अपने को मित्र बताता है सखा तुम्हे बतलाता है।
भगवान——
सुनते ही नाम सुदामा का भगवान उठे सिंहासन से
बोले अरु दौडे किलकारे रूकमिनि का प्यारा आया है।
भगवान——
बिठलाया जा सिंहासन पर नैनो के जल से पग धोये
हे सखा बहुत दुख पाये तुम सुख का युग अब आया है।
भगवान——
पहले ढूँढ़ा जमुना तटपर फिर ढूँढा कुंजन गलियन में
हे नाथ बड़ी कठिनाई से अब मैंने दरसन पाया है।
भगवान——

[१४३]

अब घर आ गए लक्षमन राम अवध में खुशी भई भारी।
पहिले मिले भरत भइया से, दूजे कैकेयी मात।
तोजे मिले मात कौशिल्या, चौथे कुटुम्ब परिवार ।।
हँसि हँसि पूछे मात कौशिल्या, कहो लंक की बात।
कैसे भइया रावण मारो, कैसे सिया लै आय।।

बाट-बाट लक्षमन ने घेरा, औघट घेरे राम।
दरवाजा अंगद ने घेरा, कूद पडे हनुमान।
हरे-हरे गोबर अँगना लिपावे, गज मोती चौक पुराऊँ।
राम सिया बैठे सिहासन, हनुमत चँवर डुलावे।
तुलसीदास भजो भगवाना, हरि चरनन चित लाय।
मात कौशिल्या करे आरती, हनुमत चवँर डुलाय॥

[१४४]

माता अनसुइया ने डाल दिया पालना
भूल रहें तीन देव बन कर के लालना।
मारे खुशी के न फूली समाती,
गोदी में लेती कभी भूला भुलाती,
कौन करे आज मेरे भाग्य की सराहना। भूल०
मेरे घर आये मुझे देने बधाई,
आकर के भूल गये सारी चतुराई,
भारत की देवियो से आज पड़ा सामना। तीन देव...
ब्रह्मलोक छोड़ मृत्युलोक को सिधारे,
ऋषियों की कुटियो पर करने गुजारे,
नाच रहा तन मन पूछे कोइ हाल ना। तीन देव—
तब तक नारद जी कुटिया पे आये,
देवों को देख अति मन में मुस्काये,
सती के सामने नष्ट भई कामना। तीनो देव—.

[१४५]

मुरारी मुरलिया बजाए चला जा,
हमें प्रेम का प्याला पिलाये चला जा।

हृदय के मन्दिर में तुमको बसा लूँ,
आँखो की पलको में तुमको बिठा लूँ,
तू रग-रग में मेरी समाए चला जा ॥
सुना है कही रूखे तन्दुल चबाये,
सुना है कही चीर जाकर बढ़ाये,
असल रूप हमको दिखाए चला जा ॥
न चाहूँ कोई, काम तुमसे कराऊँ,
न चाहूँ तुम्हे साग, रूखा खिलाऊँ,
तू चरणो की सेवा कराए चला जा ॥
सुना तान ऐसी की आ जाए मस्ती,
सब मिट जाए दुनिया के फिकरों की हस्ती,
राज की बात कुछ बताए चला जा ॥

[१४६]

कौन गुमान भरी बांसुरिया कौन गुमान भरी।
सोने की नाही, रूपे की नाही, नाही रतन जड़ी।
जात पात तोरी सब कोई जानत, मधुवन की लकड़ी।
क्या रे भई जब हरि मुख लागी, बाजत विरह भरी।
सूरदास प्रभु अब का करि है, अधरन लागि रहीं ॥

[१४७]

झूलत श्याम श्यामा संग
निरखि दम्पति अग शोभा लजित कोटि अनंग
मन्द त्रिविध बयारि शीतल अंग-अंग सुगन्ध
मचत उड़त सुवासु सग गण रहे मधुकर वन्ध
तैसिए यमुना सुभग जहँ रच्यो रग हिंडोर

तैसिए ब्रज वधू बनि हरि चितै लोचन कोर
तैसोई वृन्दाविपिन घन वन निकुज विहार
विपुल गोपी विपुल वनगृह रवन नन्द कुमार
नित्य लीला नित्य आनन्द नित्य मंगल गान
सूर सुर मुनि मुखन अस्तुति धन्य गोपी कान्ह

[१४८]

सब सों ऊँची प्रेम सगाई।
दुरजोधन घर मेवा त्यागी, साग बिदुर घर खाई
जूठे फल शवरी के खाए, बहु विधि स्वाद बताई।
प्रेम के बस नृप सेवा कीन्ही, आप बने हरि नाई।
राजसु यज्ञ युधिष्ठिर कीन्हो, तामे जूँठ उठाई।
प्रेंम के बस पारथ रथ हाक्यो भूलि गये ठकुराई।
ऐसी प्रीति बढ़ी बृन्दावन, गोपिन नाच नचाई।
सूर क्रूर यहि लायक नाही कहँ लगि करौ बडाई।

[१४९]

खेलन के मिस कुवर राधिका, नन्द महरि के आई हो।
सकुच सहित मधुरे करि बोली, घर को कुवर कन्हाई हो।
सुनत श्याम कोकिल सम बानी, निकसे अति अतुराई हो।
माता सो कछु करत कलह है रिस डारी बिसराई हो।
मैया री तू इनको चीन्हति हो बार-बार बतलाई हो।
जमुना तट काल्हि में भूल्यो बाँह पकरि लै आई हो।
आवत इहाँ तोहि सकुचत है, मै दै सोंह बुलाई हो।
सूर श्याम ऐसे गुन-आगर, नागरि बहुत रिझाई हो।

[१५०]

श्री राधे वृषभान दुलारी प्यारी वशी दीजो मोय।
या बंशी बिन चैन न पाऊँ, बशी बिन कैसे गाव चराऊँ॥
याके बल गिरिराज उठाऊँ।
शिव ब्रह्मा सनकादिक याको पार न पावे कोय॥
जैसी बशी श्याम तिहारी, हमने नैक न नैन निहारी।
तुम छलिया हम भोरी भारी।
झूठो दोष लगावो प्यारे वनमें खोइ होय।
तुम चतुर सुघर ब्रजनारी, तुमने बशी लई हमारी॥
कैसे समझाऊँ भोरी भारी।
तनक दही के कारण वा दिन गारी दीनी मोय।
चोरी करे खाय सो गारी, यहाँ को चेरी बसे तिहारी॥
को डरपै तुमसे ब्रजनारी।
आधी रात भजे मथुरा ते लाज न आई तोय।
तोसी लाखन गोबर हारी, छाछि माँग लै जाय बिचारी॥
आँख दिखावै कारी पीरी।
मिले अकेले जा दिन वन में जब देखोगे तोय।
हमें दिखावत हौं ठकुराई, नन्द बाबा की गाय चराई।
घर ही में बढ़ रहे कन्हाई।
तनक छाछ पै नाच दिखावो कहा सिखावौ मोय।
भक्तन हित यह देह हमारी तू का जाने जाति गँवारी॥
वंशी तीन लोक ते न्यारी।
श्रवन सुनत सुर नर मुनि मोहे जलथल नाथ समोय॥

[१५१]

मेरी चाह यही है रघुनन्दन, तुम्हे अपनी कहानी सुनाया करू
मेरी इसमें खुशी तुम रूठा करो,
दिन-रैन तुम्हें मैं मनाया करूँ।
कोई पागल कहे या दिवाना कहे,
चाहे मूर्ख ये सारा जमाना कहे
मेरे रोने में तुमको आये हँसी,
तो मैं रो रो के तुमको हँसाया करूँ।
श्याम कैसे भुला दूँ तेरी चाह को,
रोज पलकों से झाड़ूँ तेरी राह को।
तेरे चरणों की रज को चन्दन समझूँ
रोज माथे पे अपने लगाया करूँ।

[१५२]

सुन री सखी, तुम मथुरा को जाना,
कन्हैया से मेरा संदेश सुनाना।
पहले तो काहे हमसे प्रीति लगाई,
फिर काहे 'सुध-बुध अब बिसराई।
अच्छा नहीं है दिल का दुखाना ॥ कन्हया ॥ १
पहले तट पर रहस रचाओ,
चोरी-चोरी घर जाके माखन खायो।
यह सारी बातें याद दिलाना ॥ कन्हैया ॥ २
कह देना जाके उन कमल बदन से।
प्राण क्यों न ले गये, वह मेरे तन से।
न हमको पड़ता आँसू बहाना ॥ कन्हैया ॥ ३

[१५३]

प्रभु के नाम पे मन को लगाये बैठ हैं।
कभी तो होगी दया आशा लगाये बैठे हैं ॥
बहुत कुछ सोचने पर भी नहीं कुछ कर पाते हैं
हमारे पाप ही हमको दबाये बैठे हैं ॥ प्रभु
देखना है वह हमको किस तरह अपनाते हैं।
धर्म से हीन हूँ दुर्गुण छिपाये बैठे हैं ॥
अब तो जैसे भी हैं हम शरण पतित पावन के
तमाम जन्मों की ठोकरें खाये बैठे हैं ॥ प्रभु
द्वार खोलेगे कभी देखकर के दीन दशा।
दे दो निज शरण हम सत पथ पे आये बैठे हैं ॥

[१५४]

प्रेम हो तो प्रेम भी हरि ओर होना चाहिये।
जो बने विषयों के प्रेमी, उनको रोना चाहिये ॥
मखमली गद्दे पै सोए, ऐश और आराम से।
वास्ते परलोक के भी, कुछ बिछौना चाहिये ॥
बीज बोकर बाग के फल खाये हैं तुमने अगर।
वास्ते परलोक के भी कुछ तो बोना चाहिये ॥
हृदय में रहते हरि, बिन प्रेम के मिलते नहीं।
दूध से माखन जो चाहो तो विलोना चाहिये ॥
दिन बिताते हो अगर तुम ऐश और आराम से।
रात को सुमिरण हरी का करके सोना चाहिए।

[१५५]

पग घुँघुरू बाँधि मीरा नाची रे।
मैं तो मेरे नारायण की आपहि ह्वै गई दासी रे।
लोग कहै मीरा भई बावरी न्यात कहै कुल नासी रे॥
विष का प्याला राणा जी भेज्या पीवत मीरा हाँसी रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर सहज मिले अविनासी रे॥

[१५६]

लग गईयाँ जिदिया मुरार नाल मखियाँ।
ओ नहि फेर मेल दे संसार नाल अखियाँ।
जिन अखियाँ दे बिच बस गया मुरार ए।
पई रहदी उन्हा नु नाम दी खुमार ए।
धुल धुल पैदियाँ प्यार नाल अखियाँ।
विषिया विकारा बिच उमरा गुजारिया।
मानुष दई तू ता जरा न साँवरिया।
इन्हा कर वेखया करार नाल अखियाँ।
मोहन दी याद विच मीरा कैसी हो गई।
श्याम श्याम कह दे या आप श्याम हो गई।
लगियाँ सी ओदियाँ सरकार नाल अखियां।

[१५७]

जमुना किनारे मेरो गाँव।
बशी बजाये जइयो ॥१॥

जमुना किनारे ऊँची हवेली।
मै ब्रज की गोपिका नवेली।
राधा रंगीली मेरो नाम, बंशी बजाय जइयो ॥२॥

मल मल के स्नान कराऊँ।
घिस घिस के चन्दन खौर लग।ऊँ।
पूजा करू ँ सुबह शाम, बंशी बजाय जइयो ॥३॥
खस - खस का बंगला बनवाऊँ।
चुन चन कलियन सेजा बिछाऊँ।
धीरे धीरे दाबू ँ तेरे पांव, प्रेम रस प्याइ जइयो ॥४॥
हूँ देखत रहूँगी बाट तुम्हारी।
जल्दी अइयो कृष्ण मुरारी।
झाँकी करेंगे ब्रज वासी हँस मुस्काय जइयो ॥५॥

[१५८]

आई प्रभू के दुआरे छोड़ सब के सहारे,
खोलें प्रेम दुआरे—मोरे साँमरे।
भारी भव भीर बढ़ी है, उन मे बडी पीर उठी है।
नइया करो किनारे, गहो बाँह हमारी लेहू हमको उबारे।
नाही तुम बिन कोऊ है, अपनो सारा जन है झूठों सपनो।
पाऊँ तुमको पियारे होऊ, जगत से न्य।रे यही मन में हमारे।
अब तो तेरे मैं हाथ बिकानी, जिय मे यह बात है ठानी।
परी चरण इति हारे कृष्ण प्रिया के दुलारे, रोम२ में पुकारे।

[१५९]

मीरा मगन भई हरी के गुण गाये——प्रभू के गुण,
साँप पिटारा राणा जी ने भेजा, मीरा हाथ दियो जाय।
नहाय धोय मीरा देखन लागी, सालिक राम होई जाय।
जहर का प्याला राणा जी ने भेजा, मीरा हाथ दियो जाय।
नहाय धोय मीरा पीवन लागी, होई गयो अमर अचाय ॥

मीरा के प्रभु सदा सहायी, राखे विघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती, गिरधर पे बलि जाय ॥ मीरा०॥

[१६०]

री मेरे पार निकस गया सतगुरू मारया तीर।
विरह भाल लगी उर अंबर व्याकुल भया शरीर।
इत उत चित चलै नहिं कबहूं डारी प्रेम जंजीर।
कै जानै मेरो प्रीतम प्यारो और न जानै पीर।
कहा करूं मेरो बस नहि सजनी नैन झरत दोउ नीर।
मीरा कहै प्रभु तुम मिलियाँ बिन प्राण धरत नहिं धीर।

[१६१]

प्रीतम तू मोहे प्राण ते प्यारो।
जो तोहि देखहि हौ सुख पावत सो बड़ भागन वारो॥
तू जीवन धन तू सर्वस ही, तू ही दृगन को तारो।
जो तोको पल भर न निहारूँ, दुखित जग अंधियारो॥
मोह बढ़ावन के कारन हम, भाँति निरूपहि धारो।
नारायण हम दोऊ एक है, फूल सुगन्ध न न्यारो॥

[१६२]

मेरे दिल में बसने वाले,
मैं तो तेरा ही फकीर।
तू है मेरा मैं हूँ तेरा,
तुझ बिन और कोई न मेरा,
चारों तरफ से हुआ है अंधेरा,
दुनिया है बेपीर॥ मैं० तो०

भजन तू ही है माला तू ही है,
जीवन का आधार तू ही है,
सब जग का सिरजन तू ही है,
मेरे नाथ मुनीर ॥ मैं० तो०
तू ही हसावे तू ही रुलावे,
दुख में याद तेरी ही आवे,
विपति पड़े पर आन बंधावे,
मेरे मन को धीर ॥ मैं० तो०
मेरा काम तेरे गुण गाना,
तू भी मुझको भूल न जाना,
भक्त हुआ तुझ पर दीवाना,
बिनती है आखीर। मैं० तो०

[१६३]

कन्हैया तुम्हे एक नजर देखना है।
जिधर तुम छिपे हो उधर देखना है।
अगर तुम हो दीनों को आहों के आशिक।
तो आहों का अपनी असर देखना है। ——
उबारा था जिस हाथ ने गीध गज को
उसी हाथ का अब हुनर देखना है।
विदुर भीलनी के जो घर तुमने देखे।
तो हमको तुम्हारा भी घर देखना है।——
टपकते है दृग बिन्दु तुमसे ये कहकर।
तुम्हें अपनी उलफत में तर देखना है।——

[१६४]

मैने चाकर राखो जी, मोरे सावरिया गिरधारी लाल .....
चाकरि मे दर्शन नित पाऊँ, सुमिरन पाऊँ खरची
भक्ति भाव जागीरी पाऊँ, तीनो बाते सरसी
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ, नित उठि दर्शन पासूँ
वृन्दावन की कुंज गलिन में, तेरी लीला गासूँ
हरे-हरे नित बाग लगाऊँ, बिच-बिच राखूँ क्यारी
साँवरिया के दर्शन पाऊँ, पहने कुसुमी सारी
जित बैठावे तितही बैठूँ, जो देवे सोई खाऊँ
मेरी उनकी प्रीत पुरानी, वेचे तो बिक जाऊँ
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, गल बैजन्ती माला
वृन्दावन मे धेनु चरावत, मोहन मुरली वाला
जोगी आया जोग करन को, तप करने सन्यासी
हरी भजन को साधू आया, वृन्दावन के वासी
मीरा के प्रभु गहर गम्भीरा, धरे रही मन धीरा
आधी रात प्रभु दर्शन दैहै, प्रेम नदी के तीरा

[१६५]

जब नैनों से नीर बहे, तब समझो आस मिलन की।
प्रभु आन मिलो प्रभु आन मिलो ।
जब प्रेमी रो रो पड़े तब समझो आस मिलन की।
पागल मनुवा सुध बुध खोवे,
ना सोचे जग क्या कहे, जात न पात न जाने ।
बस प्रेम डूबा रहे, तब समझो आस मिलन की।

मान जाने अपमान न जाने, सब कुछ करता राम,
विद्यानन्द लगन जब ऐसी,
जब झर-झर नीर बहे, तब समझो आस मिलन की।

[१६६]

राणाँ जी, मै तो साँवरे के रँग राती।
जिनके पिया परदेश बसत है लिख २ भेजत पाती।
मेरा पिया मेरे हृदय बसत है, यह कछु कही न जाती॥
झूठा सुहाग जगत का सजनी, होय होय मिट जासी।
मैं तो एक अविनासी करूँगी जाहि काल नहि खासी॥
और तो प्याला पी पी माती, मै बिन पिए ही माती।
ये है प्याला प्रेम हरी का, छकी रहूँ दिन राती॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, खोल मिली तन छाती।
कोई कहै खरी कै खोटो, प्रेम की रीति सुहाती॥

विरह

[१६७]

कोई श्याम प्यारे से कह दे ये जाकर,
भुला क्यो दिया मुझे अपना बना के।
अभी मैंने तुमको पुकारा नहीं था,
मेरा और कोई सहारा नही था,
चले क्यों गये वह जो नेहा लगा के।
भिगो क्यों चले मेरी रस की चुनरिया,
मेरे श्याम प्यारे सलोने सवरिया,
तड़पा क्यो गये मुझे दरश दिखाके।
अभी मेरे आँखो मे आँसू भरे है,
जख्म मेरे दिल के अभी तो हरे है,
चले क्यों गए मेरे दिल को चुराके।
कोई श्याम ---------

[१६८]

सखी री मुझे हरि बिन कछु न सोहाय।
निसदिन ध्यान धरत तुम ही सब
नैनन जल बरसाय।
कब मिलि हौ मेरे कृष्ण सावरो
जीवन बीतो जाय।
एक दिन कटत एक योजन सम

कासे कहूँ दुख जाय।
बिन दरसन के तरसत अखियाँ
रह रह जिया घबराय।
ध्यान धरत मेरी उमर गुजर गई
प्रेम न हृदय समाय।
करुण पुकार सुनो मेरे भगवन
चरण गहूँ चित्त लाय।
गज की टेर सुनी प्रभु तुमने
नगे पायन धाय।
द्रुपद सुता की लाज बचायो
भरी सभा में जाय।

[१६९]

कोई ऐसी सखी चातुर न मिली, जो पिय का दुअरवा बता देती।
मैंने राह पियारे की देखी नहीं, मोरी बहियां पकड पहुँचा देती।।
जब भटक भटक कर मै हारी, अरु आरत नाद उठा भारी।
शंकर शिव भोला नाथ गही मोरी, बांह की लाज रखी।।
मुझ दीन अरु हीन अकिंचन पै, बिन कारण नाथ कृपा कीन्हीं।
शरणा गत पाल कृपालु प्रभो, निज चरणन की धूली दीन्हीं।।
भयो जियरा लगन आनन्द मगन भव सिधु विनास दियो भगवन।
मोरे सइयाँ ने बहियां गही मोरी, मै तो भूल गई सुधि तनमन की।।

[१७०]

मेरे देवता मुझको देना सहारा।
कही छूट जाये न दामन तुम्हारा।।
तेरे रास्ते से हटाती है दुनियाँ।
इशारे से मुझको बुलाती है दुनिया।

न देखूँ मै दुनिया का झूठा इशारा,
कही छूट जाए न दामन तुम्हारा
सिवा तेरे दिल में समाये न कोई,
लगन का ये दीपक बुझाये न कोई।
तुम्ही मेरी नैय्या तुम्ही हो किनारा,
कही छूट जाए न दामन तुम्हारा।
दासी ये तुम्हारी आई है द्वारे,
भर दो ये झोली रो २ पुकारे।
खाली न जाऊँ प्रभु तेरे चरणो से,
कही छूट जाए न दामन तुम्हारा।

[१७१]

दरस बिन दूखन लागे नैन।
जबसे से तुम बिछुरे प्रभु मेरे, कबहुँ न पायो चैन।
सबद सुनत मोरी छतिया काँपे, मीठे लागै बैन।
कल न परत पल हरि मग जोवत भई छमासी रैन।
बिरह ब्यथा कासूँ कहूँ सजनी, बह गई करवत ऐन।
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेटन सुख दैन।

[१७२]

निश दिन बरसत नेन हमारे।
सदा रहत पावस ऋतु हम पर,
जबसे श्याम सिधारे॥
अजन थिर न रहत अखियन में,
कर कपोल भये कारे॥

कंचुकि पट सूखत नहि कबहूँ,
उर बिच बहत पनारे ॥
आँसू सलिल भये पग थाके,
बहे जात सित तारे ॥
सूरदास अब डूबत है ब्रज,
काहे न लेत उबारे ॥

[१७३]

कहाँ छोड़ हे नाथ हमको सिधारे,
विरह वेदना में ये दुखिया पुकारे।
तुम्हारे बिना कैसे रहूँगी,
प्रभू लागे जिया नहिं मोर।
तेरे दर्शन बिना हम बेकरार रहते हैं,
तेरे दर के बिना ठोकर हजार खाते हैं।
आओ आओ प्रभू जी मोरे आओ,
डूबत हूँ मैं आन बचाओ। तुम्हारे ॥
नाते संसार के जोडे थे सभी तोड़ दिये,
तुम्हारे हो गये हम आज उम्र भर के लिये।
अब आओ न दर्शन दिखाओ,
आ कर के मुझे अपनाओ। तुम्हारे ॥
अब न्यारी मै नाही रहूँगी,
नाहीं तो मैं प्राण तजूँगी।
आओ अंग से अंग लगाओ,
निज ज्योति में ज्योति मिलाओ।

[१७४]

तलफै बिन बालम मोरा जिया।
दिन नहि चैन रैन नहि निदियाँ,
तलफ तलफ के भोर किया।
तन मन मोर रहट अस डोले,
सूनी सेज पर जनम छिया।
नैन थकित भये पन्थ न सूझे,
साँई बेदरदी सुधि न लिया।
कहै कबीर सुनो भाई साधो,
हरो पीर दुख जोर किया।

[१७५]

बिछुड़े घनश्याम मिले कैसे।
धोती जो फटे दर्जी से सिले,
हृदय जो फटे तो सिले कैसे॥
छानी जो गिरे तो बड़ौरी साधै,
सागर जो गिरे तो सधै कैसे॥
आग लगे तो पानी से बुझे,
हृदय जो जले तो बुझै कैसे॥
परदेश गये पिय आस लगी,
जो जग से गये तो मिले कैसे॥
बिछुड़े घनश्याम——……

[१७६]

अब तो तेरे हाथ बिकानी।
मृदु बोलन मुसकान माधुरी, तन मन मौन समानीं॥
लोक लाज कुल कानि तजी, सब जामे तुम रुचि लीनी।
धर्म कर्म ब्रत नेम सबै सो, तोई रंग रस भींनी॥
तुम कारण यह भेष बनायो, प्रगटि उघरि करि नाची।
नाऊ कुनाऊ घरु किन कोऊ, हौ नहीं न मति कांची॥
होनी हाय सो होय भले ही, तन मन लगन लगी है।
कृष्ण प्रिया ललित तिहारे, मति अनुराग पगी है॥

[१७७]

रिमझिम बरस रही बादरिया
पिय घर आये नाहीं मोर
नन्हीं नन्ही बुंदिया मेहा बरसे,
पवन चलत झकझोर॥ रिमझिम॥
कारी बदरिया जिया डरपावै,
कॉपत जियरा मोर॥ रिमझिम॥
नैना बरस रहे निसिवासर,
भींजत अचरा मोर॥ रिमझिम॥

[१७८]

तोरे बिन रसिया सुहाय नही बतिया,
मै कैसे रहूँ बोलो साँवरिया।
सब जग आशा तजि आई थी शरण तोरी,
तूने मोहे छल लियो हो साँवरिया।

अब तजि दाया करो, दुखिया के कष्ट हरो,
पतित उधारन हो साँवरिया।
जनि तरसावो मोहे, अब न सताओ मोहे।
चरण परी तोरे हो साँवरिया॥
अब बड़ी देरी भई, परखत देरी भई।
मग जोहत मैं भई बावरिया॥
अब जनि देर लगावो मोरे प्रभू।
तड़पत हूँ जैसे जल की मछरिया॥

[१७६]

बरसे बदरिया सावन की
सावन की मन भावन की।
सावन में उमग्यो मेरे मनुवा,
भनक सुनी हरि आवन की।
उमड़ घुमड़ चहुँ दिसि से आयो,
दामिण दमके झर लावन की।
नन्ही नन्ही बूँदन मेहा बरसे,
सीतल पवन सोहावन की।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर,
आनन्द मंगल गावन की।

होली

[१८०]

नेक ठाड़े रहो श्याम तोपे रंग डारौ।
अबीर गुलाल मलो मुख तेरे, गालन पर गुलचा मारौ
चोवा चन्दन और अरगजा घिस घिसि के तोपै डारौ
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छबि तन मन धन तोपै वारौ।

[१८१]

पिया ऊँची रे अटरिया, होरी देखन चली।
ऊँची अटरिया जरद किनरिया लगी नाम की डोरिया।
चाँद सूरज दियना ऋतु है, ता बिच भूली डगरिया।
पाँच पचीस तीन घर बनिया, मनुवा है चौधरियां।
मुंशी है कोतवाल ज्ञान कों, चहुं दिशि लागी बजरिया।
आठ महातम दस दरवाजा, नौ में लागी केबरिया।
खिरकी बैठी गोरी चितवन लागी, उपरी झांप झोपरिया
कहत कबीर सुनो भाई साधो, गुरू के चरन बलहरिया।
साधू संत मिल सौदा करिहै, जाके मूर्ख अनरिया।

[१८२]

रस नागर श्याम रची होरी
श्यामा रूप बने मनमोहन श्याम स्वरूप बनी गोरी
मनमोहन सिर लसत चन्द्रिका मुकुट विराजत सिर गोरी
रमकि झमकि सब सखी सहेली आप लई निज २ ओरी
अबीर गुलाल कुमकुमा केसर मार रची रस रंग बोरी
डफहि बजावत गावत चाचरि उमड़ रही श्री बन खोरी
मदुरा सखी युगल छबि निरखत बार २ लखि तृन तोरी

[१८३]

बरसाने आज मची होरी।
ग्वाल बाल अब सखा संग लिये,
अबीर गुलाल भरे झोरी।
गोपी झुण्ड झुण्ड सब मिलके,
गावत रसिया रस बोरी।
रंग भरी पिचकारी लै लै,
तकि—तकि मारे अग ओरी।
सुबल सखा को पकड़ लियो कर,
गुलचा मारे मुख मोरी।
दधि का दान लियो बहुतेरो,
तै मोरी मटुकी फोरी।
भाजे श्याम सखा सग लिये,
गोपी घेरे चहुँ ओरी।
मारत भाजत गिरत परस्पर,
अंग पकर कर झकझोरी।
सखी सहेली उमंग हिये में,
हरषित प्यारी मुख मोरी।
ललिता पकरि श्याम को लाई,
विनय करत है कर जोरी।

विविध

[१८४]

ऐरी मैंने प्रेम रतन धन पायो,
सत गुरु हाथ धरे सिर ऊपर, भव सागर तरि जायो।
कठिन काल की क्रूर गति से मन छुटकारा पायो॥
मैं निरगुनियाँ निर धनियां को करि किरपा अपनायो।
जनम जनम की उर की ज्वाला, दुःख के फन्द छुड़ायो॥
वस्तु अमोलक उर बिच राखी, प्रेम के दीप जलायो।
कृष्ण प्रिया भजियो मन शंकर, भाग्य हमारी जाग्यो॥

[१८५]

लागे वृंदाबन नीको, आली हमें लागे वृन्दाबन।
घर घर तुलसी ठाकुर पूजा, दर्शन गोबिन्द जी को॥
निर्मल नीर बहत यमुना को, भोजन दूध दही को।
रतन सिहाँसन आप विराजै, मुकुट धरे तुलसी को॥
कुजंन कुजंन फिरत राधिका, शब्द सुनत मुरली को।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, भजन बिना नर फीको॥

[१८६]

डर लागे और हाँसी आवे,
अजब जमाना आया रे॥
धन दौलत ले माल खजाना,
वेश्या नाच नचाया रे॥ डर.

मुट्ठी अन्न साधू कोई मांगे,
कहे नाज नही आया रे ॥ डर......

जँह कहुं होवे कथा-पुराण,
बक्ता मूढ़ पचाया रे ॥ डर...

साधू चरणामृत न पीने,
मदिरा पीवन आये रे ॥ डर......

जँह कहूं होवे स्वाँग तमाशा,
तनिक न नीद सताये रे ॥ डर...

जब जाने की भई तैयारी,
कहे न हरि गुण गाया रे ॥ डर.....

जब तक रहेगा इस दुनियाँ में,
कहे उमर अभी बाकी रे ॥ डर......

आज नहीं अब कल से करेंगे,
कहत सुनत दिन बीता रे ॥ डर......

आय अचानक काल खड़ा है,
सिर-धुनि-धुनि पछिताना रे ॥ डर......

कृष्णानन्द कहे सुनो भाई,
सतगुरु नाम ठिकाना रे ॥ डर......

[१८७]

बाल्मीक तुलसी जी कह गए
ऐसा कलियुग आएगा
ब्राह्मण होइके वेद न जाने
मिथ्या जनम गँवायेगा...

बिना खड्ग के क्षत्री होइहैं
शूद्रहि राज चलावेगा....
बेटा मात-पिता नहि चीन्हें
तिरिया स्नेह लगावेगा....
सोई तिरिया स्वामी को न जाने
आन पुरुष मन भावेगा—
जती सती बिरले कोई हौइहैं
सब दुखिया हो जावेगा....

[१८८]

मैं हूँ भटका हुवा एक राही
मुझको रास्ता दिखा मेरी माई..
जग की ममता ने मुझको है घेरा
छाया है चारों ओर अँधेरा
मेरी तकदीर गर्दिश में आई....
जागती ज्योति दे दे सहारा
डूबते को दिखादे किनारा
मेरी नैय्या भँवर में है आई...
दुनिया दारों से प्रीति लगा के
तेरी शक्ति को दिल से भुला के
मैंने हरजा ही ठोकर खाई....
हूं गुनहगार शरणों मैं आया
बख्शो मैया मै हूँ तेरा बेटा
तेरे दर पे ही दूगा दुहाई

कोई साथ सखा है न मेरा
मुझको एक भरोसा है तेरा
तेरे दर पे है धूनी रमाई.....
मेरी मंजिल है तेरा दुआरा
पाना चाहता हूँ दर्शन तुम्हारा
है इसी में भगत की भलाई —

[१८६]

दो फूल साथ फूले किस्मत जुदा जुदा है।
एक का बना है सेहरा, एक कब्र पर चढा है ॥
दो मुर्ग बिस्मिलाये देखो जरा ये किस्मत।
एक फौज में उडा है, एक कत्ल हो रहा है ॥
एक ही शक्ल के निकले, एक साथ ही दो मोती !
एक ताज में जड़ा है, एक पिस रहा खरल में॥
दो भाईयों को देखो, रिश्ते में हैं हकीकी।
एक शाहे नामवर हे, एक दस्ते कागवर है ॥

देवी गीत

[१९०]

मइया तोरी धूल भरी है पैजनिया।
के हो गढ़े मइया पाँव पैजनिया,
के हो डलावे रुनझुनिया।
सुनरा गढ़ावे मइया पाँव पैजनिया,
लोहरा डलावे रुनझुनिया।
के हो चढ़ावे मइया पाँव पैजनिया,
के हो चढ़ावे रुनझुनिया।
राजा चढ़ावे मइया पाँव पैजनिया,
रानी चढ़ावे रुनझुनिया।

[१९१]

लगा है प्रेम गर तुमसे निभा दोगी तो क्या होगा।
अगर चरणों की सेवा में लगा लोगी तो क्या होगा।
मै पापी हूँ मै दुष्टा हूँ,
निकम्मी हूँ अधर्मी हूँ।
मुझे इन पाप दोषों से छुड़ा लोगी तो क्या होगा।
पड़ी मझधार में नैया
भरोसा है मुझे तेरा
मेरी नौका किनारे से लगा दोगी तो क्या होगा।
न मुझमें बुद्धि बल विद्या
न मुझमें एक भी गुण है।
भरे अवगुण जो मेरे में हटा दोगी तो क्या होगा।

सभा में द्रोपदी तेरी
पुकारा नाम माता का
हे माता लाज अब मेरी बचा लोगी तो क्या होगा।
न पड़ती चैन दिल में है
न रतिया नीद आती है
तुम्हारी याद मैं मइया ये मन्दिर सूना रहता है।
लगा है...... ......—

[१६२]

देवी जी मैं शरण आई रे मेरा ध्यान लगा तेरी ओर
सिर सोने का मुकुट विराजे
गल फूलन का हार
बदन पर छाय रहा-मेरा ध्यान—.......
देवी दुआरे एक हरो २ पीपर
भवन पर छाय रहा-मेरा ध्यान···—
लाल ध्वजा फहराय
देवी दुआरे एक नदिया बहत है
मानो गंगा हहराय
मंदिर पर छाय रहा-मेरा ध्यान·······—
जो २ ध्यावे देवी सोई फल पावे
बेमुख कोई न जाय
मगन होइ के जाय। मेंरा ध्यान—·—

आरती

[१६३]

करहि आरती आरत हर की
रघुकुल कमल विपिन दिनकर की
आरति सीता राम चरन की
भरत शत्रुघन श्री लछिमन की
कौशिल्यादि मातु परिजन की
श्री दशरथ के जीवन धन की
जय मुनि मनरजन सुखकर की ॥ करहि आरती ॥
तेजपुज रघुवर उर वासी
सकल सिद्धि सुख सम्पति रासी
आरति हनूमान बलरासी
दुष्टदलन जय भव भय नासी
राम चरण पंकज मधुकर की ॥ करहि ॥
आरति राधा कृष्ण चन्द्र की
वासुदेव आनन्द कन्द की
मातु यशोदा सहित नंद की
गोधन गोपिन गोप वृन्द की
लक्ष्मी नारायण हरि हर की ॥ करहि ॥
आरति शंकर पारवती की
गणपति दुर्गा, सरस्वती की
सकल तीर्थ गुरुदेव भक्ति की
विपति विनाशक मंगलकर की ॥ करहि ॥

जो गावहि सुख सपति पावहि
रोग दोष, दुख दरिद नसावहि
भक्ति मुक्ति रिधि सिद्धि दसावहि
नारद शुक मुनि हरि गुण गावहि
जय सच्चिदानन्द प्रभुवर की
करहि आरती आरत हर की
रघुकुल कमल विपिन दिनकर की ॥

[१६४]

आरती युगुल किशोर की कीजै ।
राधे धन न्यौछावर कीजै ॥
रवि-शशि कोट बदन की शोभा ।
ताहि निरख मेरो मन लोभा ॥ आरती०

गोरे श्याम मुख निरखत रीझे ।
प्रभु को स्वरूप नैन भर पीजै ॥ आरती०

कंचन थार कपूर की बाती ।
हरि आये निर्मल भई छाती ॥ आरती०

फूलन की सेज फूलन की माला ।
रतन सिहासन बैठे नन्दलाला ॥ आरती०

मोर मुकुट पर मुरली सोहे ।
नटवर वेष देख मन मोहे ॥ आरती०

श्याम अंग में पीत पटधारी ।
कुंज बिहारी गिरवर धारी ॥ आरती०

नन्दनन्दन वृषभान किशोरी ।
श्री पुरुषोत्तम गिरवर धारी ॥ आरती०

आरती करत सकल ब्रजरानी।
परमानन्द स्वामी अविचल जोरी ।। आरती०

[१६५]

आरति श्री गुरू देव की कीजे।
तन मन प्राण निछावर कीजे ।।
चेतन चौकी सत्य को आसन।
मगन रूप तकिया धर दीजे ।।
तन का थार ज्ञान की बाती।
भक्ति भाव का घी भरि दीजे ।।
सुरति मजीरा निरति तंबूरा।
सोहन शंख बजाय जो दीजे ।।
जगमग-जगमग ज्योति जलाकर।
यहि विधि सो गुरु आरति कीजे ।।

[१६६]

अम्बे तू है, जगदम्बे काली जै दुर्गे खप्पर वाली।
तेरे ही गुण गाएँ, भारती ओ मइया-हम सब उतारे तेरी आरती ।।
तेरे जगत मे भक्त जनन पर भीर पड़ी है भारी।
दानव दल पर टूट पड़ो माँ करके सिंह सवारी ।।
सौ-सौ-सिंहो सी बलशाली, दशो भूजाओं वाली।
दुष्टों को संहारती ओ मइया-हम सब ......
माँ बेटे का है इस जग मे सबसे बड़ा ही नाता।
पूत कपूत सुने है पर न माता सुनी कुमाता ।।
सब पै अमृत बरसाने वाली, सबको हरसाने वाली।
नइया भँवर मे उबारती हो मइया-हम सब........

हम न माँगते धन औ दौलत, न चाँदी ना सोना।
हम तो माँगे माँ तेरे मन में एक छोटा सा कोना॥
सब पै करुणा बरसाने वाली, विपदा मिटाने वाली।
सतियों के सत को सवांरती हो मइया–हम सब उतारें
तेरी आरती

[१९७]

आओ भोग लगाओ मेरे प्रभु जी—
शबरी के बेर सुदामा के तन्दुल
रुचि रुचि भोग लगाओ.. ...१
दुर्योधन घर मेवा त्यागो
साग विदुर-घर खायो..... ......२
ऐसा भोग लगाओ मेरे प्रभु जी,
सब अमृत होय जाए...... ..३
जो तेरे इस भोग को खाए
सो तेरा बन जाए ४